थिऑसोफी के मूल सिद्धान्त

सी. जिनराजदास

—अनुवादक
रामचन्द्र शुक्ल

भाग २

थिऑसोफीके मूल सिद्धान्त

भाग: २

लेखक

सी· जिनराजदास

भूतपूर्व अध्यक्ष

थिओसॉफिकल सोसायटी

अनुवादक

रामचन्द्र शुक्ल

आनन्द प्रकाशन लिमिटेड, बनारस–१.

प्रकाशक :

आनन्द प्रकाशन लिमिटेड,
थिओसॉफिकल सोसायटी,
कमच्छा, बनारस-१.

प्रथम हिंदी संस्करण

सितम्बर १९५४

मूल्य १-१२-०

मुद्रक :

रामेश्वर पाठक,
तारा यन्त्रालय,
कमच्छा, बनारस-१.

विषय सूची

पाँचवाँ अध्याय

अदृश्य जगत

हम सभीके जीवनमें हमारे चारोंओरके जगतका बड़ा प्रभाव रहता है ; कदाचित् सबसे अधिक प्रभाव हमारे जीवनपर हमारे वातावरणकाही पड़ता है। जगत्के सम्बन्धमें हमारे ज्ञान और अनुभवसेही हमारा बहुत कुछ निर्माण होता है। हम संसारको अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जानते हैं और यदि हमारी कोई ज्ञानेन्द्रिय दूषित होजाती है, तो उस दोषके कारण हमारा संसारका ज्ञान किंचित कम होजाता है। अब यद्यपि हम निरन्तर अपनी ज्ञानेन्द्रियोंका उपयोग करते रहते हैं और अपने आस-पासकी वस्तुओंको देखते, सुनते, छूते, चखते तथा सूँघते रहते हैं, फिर भी हम इस बातको कदाचितही कुछ समझ पाते हों कि चेतनाकी कितनी दुरूह क्रियाओं द्वारा हमें यह बाह्यजगत्का ज्ञान होता है ; और हम यह भी ठीक-ठीक समझ नहीं पाते कि जो कुछ हम संसारका ज्ञान करपाते हैं, वह जानने योग्य ज्ञानका बहुत सूक्ष्म अंश है।

आइये, दृष्टि द्वारा प्राप्त ज्ञानपरही विचार करें। किसी वस्तुको 'देखने'से हमारा तात्पर्य क्या है ? इसके अर्थ ये हैं कि प्रकाशके कम्पन हमारे समक्षकी वस्तुसे आकर नेत्रोंपर पड़ते हैं और हमारी चेतना उन कम्पनोंको आकार और रङ्गके रूपमें समझती है। हम केवल किसी वस्तुका सामनेकाही रूप देख पाते हैं; सारी आकृतिको, आगे और पीछे, हम देख नहीं पाते। इस प्रकार हमारी देखनेकी शक्ति प्रकाशकी लहरोंके कारण है और हमारी आँखें इन लहरोंको ग्रहण करती हैं। किंतु प्रकाश स्वयं क्या वस्तु है ? इस प्रश्नका उत्तर देते हुए हमारी समझमें आजायगा कि वास्तविक जगत्का कितना थोड़ा अंश दृश्य जगत् है, और कितना अधिक अंश अदृश्य।

चित्र ४९ में प्रकाश संबंधी प्रमुख तथ्योंको दिखाया गया है। प्रकाश कम्पन है और इस कम्पनकी संख्याके

चित्र ४९
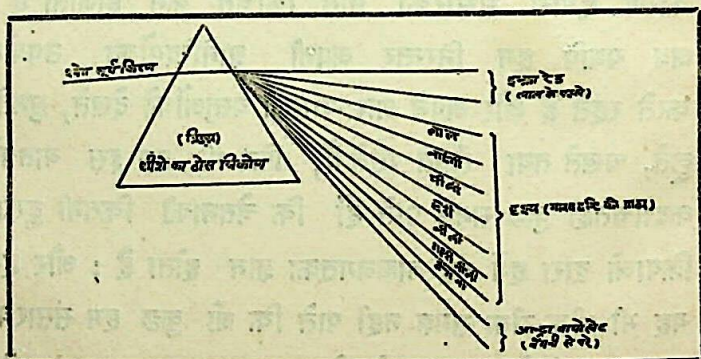
अनुसार रङ्गोंका प्रकटीकरण होता है। जिस प्रकाशकी सहायतासे हम देखते हैं वह सूर्यसे आता है। सूर्य कम्पनोंके पुंज प्रवाहित करता रहता है। हम इस प्रकाशपुँजको श्वेत प्रकाश कहते हैं। किंतु यदि एक त्रिपार्श्व काँच (प्रिज़्म) बीचमें रख दें, तो काँचके कण इस प्रकाशपुँजको उसके 'योजक कम्पनोंमें बिखेर देते हैं। ये कम्पन हमारी आंखोंके पीछेके चित्रपटपर पड़नेपर चेतनामें रङ्गका ज्ञान उत्पन्न करते हैं। जो रङ्ग हमारी आँखें देख पाती हैं, वे होते हैं, लाल, नारङ्गी, पीला, हरा आस्मानी, नीला और बैंगनी। ये ही सात रङ्ग, उनके हल्के गहरे प्रकार, तथा उनकी मिलावटसे बने रङ्गोंसे ही सारा संसार हमें रङ्गीन दिखाई देता है।

किंतु जो रंग हम देखते हैं, सिर्फ उन्हीं रंगोंका अस्तित्व हो, ऐसा नहीं है। हम तो केवल वे रंग देखते हैं जिन्हें हमारे नेत्र ग्रहण कर पाते हैं। हमारी आँखोंकी ग्रहणशीलता सीमित है, हम लोग सतरंगे (स्पेक्ट्रम)में लालसे आस्मानी तक रंगोंको देखते हैं, फिर बैंगनी। आस्मानी और बैंगनीके बीच नीले रंगको उस सतरंगेमें किसी-किसीकी ही आँखें ग्रहण कर पाती हैं। जबतक ३८००० कंपन प्रति इञ्चसे अधिक बड़े कंपन (जो लाल रंग देते हैं) नहीं होते, और न ६२००० कंपन प्रति इञ्चसे छोटे (जो बैंगनी रंग बनाते हैं) ही होते हैं, तबतक सूर्यके इन कंपनोंको हम ग्रहण कर पाते हैं और

हमें रंगका ज्ञान होता है। लेकिन छोटासा प्रयोग करनेसे हमें पता चल जायगा कि लालके पहले और बैंगनीके परे भी कंपन होते हैं, जिनसे भी, यदि हमारे नेत्र इन कंपनोंको ग्रहण कर पाते, तो, किसी रंगका अर्थ निकलता। यदि सतरङ्गे (स्पेक्ट्रम) के बननेके बाद जहाँ इन्फ्रारेड, (लालसे परे) किरणें पड़ती हैं और जिन्हें हम देख नहीं पाते, एक जलानेवाले शीशेको रख दें और जहाँ किरणें केन्द्रित होती हैं वहाँ फॉस्फरसका एक टुकड़ा रख दें, तो फॉस्फरस जल उठेगा। स्पष्ट है कि लाल रंगके पहिले भी कंपन हो रहे हैं जो गरमी उत्पन्न करते हैं! इसी प्रकार सतरंगेके दूसरे छोर पर बैंगनी किरणोंको एक आड़ रखकर रोक दें और बैंगनी रङ्गके परे, जहाँ हमें कुछ भी दिखाई नहीं देता है, प्लैटिनोसायनाइडसे पुती एक पटरी रख दें, तो पटरी उन अल्ट्रावॉयलेट (बैंगनीसे परे) किरणोंके प्रभावसे चमक उठेगी। सिद्ध हुआ कि सूर्यकी किरणोंमें इन्फ्रारेड (लालसे पहिले) और अल्ट्रावॉयलेट (बैंगनीके परे) रङ्ग भी हैं जो हमारी आँखोंको अदृश्य हैं। यदि हमारी आँखें उन्हें देख पातीं तो हमको नये रङ्ग और रङ्गोंके नये प्रकार दिखाई पड़ते।

उसी तरह हमारी श्रवणशक्ति, भी सीमित है। ऐसी ध्वनि हैं जो अधिक ऊँची होनेके कारण या अत्यधिक धीमी होनेके कारण हमें सुनाई नहीं देतीं। वायुकी लहरोंसे

ध्वनि उत्पन्न होती है । ऑर्गन बाजेका निम्न 'सी' स्वर वायुकी ध्वनि-लहरके १६॥ लहर प्रति सेकण्डकी गतिसे उत्पन्न होता है । कुछ लोग इसे सुन पाते हैं और कुछ लोग ४० लहर प्रतिसेकंडसे कम कम्पनकी ध्वनि सुन ही नहीं पाते । यही दशा ऊँचे स्वरोंकी है । कुछ लोग ४०००० कम्पन प्रति सेकण्डकी ध्वनि भी सुन लेते हैं और कुछ लोग २०००० कंपन प्रति सेकंडसे अधिक गतिके कम्पनोंसे उत्पन्न ध्वनिको नहीं सुन पाते । जिन कोई स्वरोंको हम सुन नहीं पाते, हमारे लिए उनका अस्तित्व ही नहीं है । जिनके कान उन स्वरोंके लिए ग्रहणशील हैं, उनके लिए इन स्वरों और ध्वनियोंका अस्तित्व है ।

चित्र ४६ में कम्पनोंकी एक तालिका दी है, जिससे एक साधारण ज्ञान इस बातका होसकता है कि वायु और ईथरमें *उठनेवाले कम्पनोंका क्या प्रभाव प्रकृति पर पड़ता है । यदि हम एक झूलते हुए लटकनकी कल्पना पहिले सेकण्डमें दोबार, फिर चारबार, फिर आठबार डोलनेकी करें और इसी प्रकार दुगनी करते जायँ तो हम प्रति सेकण्ड कुछ कम्पन पैदा

---

* मैं जानता हूँ कि आधुनिक कालके भौतिकशास्त्रमें ईथरका अस्तित्वही अनावश्यक समझकर अस्वीकार कर दिया गया है, क्योंकि प्रकाश संबंधी सभी दृश्योंको विना किसी ईथर सरीखे पदार्थके माध्यम को माने भी समझा और समझाया जासकता है। परन्तु ईथरका अस्तित्व है, क्योंकि मैं उसे देखता हूँ। मूल लेखक।

कम्पनोंकी तालिका

प्रस्थान विंदु			लटकनकी गति
१	....	....	२ कम्पन प्रति सेकण्ड
२	....	....	४ ,,
३	....	....	८ ,,
४	....	....	१६ ,,
५	....	....	३२ कानोंको ग्राह्य ध्वनिका प्रारंभ
६	....	....	६४
७	....	....	१२८
८	....	....	२५६
९	....	....	५१२
१०	....	....	१०२४
१५	....	....	३२७६८ कानोंको सुनाई देना समाप्त
२०	....	....	१०४८५७६ विद्युत् लहरोंका आरंभ
२५	....	....	३३५५४४३२
३०	....		१०७९७४१८२४
३५	....		३४३५९७३८३६८ विद्युत् लहरें समाप्त
४०	....		१०९९५११६२७७७६
४५			३५१८४३७२०८८८३२ मानवचक्षुको ग्राह्यप्रकाशका आरंभ
५०			११२५८९९९०६८४२६२४ ,, ,, ,, समाप्त
५५			३६०२८७९७०१८९६३९६८
५६			७२०५७५९४०३७९२७९३६
५७			१४४११५१८८०७५८५५८७२
५८			२८८२३०३७६१५१७११७४४ क्ष किरणोंका आरंभ
५९			५७६४६०७५२३०३४२३४८८
६०			११५२९२१५०४६०६८४६९७६
६१			२३०५८४३००९२१३६९३९५२
६२			४६११६८६०१८४२७३८७९०४
६३			९२२३३७२०३६८५४७७५८०८

चित्र ४६

करते जायँगे। पाँचवीं वार जब ३२ कम्पन प्रति सेकण्डकी गति होगी, तो ध्वनि सुनाई देने लगेगी और तेरहवीं बारसे पन्द्रहवीं बारके बीचमें जब कम्पनकी गति ३२००० के लगभग पहुँच जाती है, ध्वनि कानोंकी सुननेकी शक्तिसे परे, ऊँची होजाती है। ये कम्पन बढ़ते-बढ़ते विद्युत्की लहरोंमें परिवर्तित होजाते हैं और फिर प्रकाशकी लहरोंमें। प्रकाशकी लहरें भी ४९ से ५० वीं बारके कम्पनों तक ही हमारी आँखोंको दृष्टिगोचर होती हैं, फिर आगे नहीं। एक मिनटमें इञ्चके कुछ अंशोंसे लेकर मीलों तक लम्बी लहरोंमेंसे, जिनका वर्गीकरण विज्ञानने किया है, कुलके नवें भागसे कुछही अधिक हमारी इन्द्रियोंको ग्राह्य होता है। इस प्रकार विज्ञानद्वारा शोधित समस्त संसारके आठवें भागके लगभग अंश ही हमें इन्द्रियों द्वारा ज्ञात है। आठ भागोंमेंसे सात भाग हमारी चेतनासे परेही रहते हैं।

कल्पना करिये कि हमारी ज्ञानतंतुएँ दूसरे प्रकारसे बनी होतीं। वे प्रकाशकी लहरोंको ग्रहण न करके विद्युत्-कम्पनोंको ग्रहण करतीं तो हमारे लिए सारे जगत्की रूपरेखाही बदल जाती। सूर्य चमकता, किंतु हमारे लिए प्रकाश न होता। सारा वायुमंडल हमारे लिए पारदर्शी न होकर ठोस अपारदर्शक होता। केवल रेडियो द्वारा ग्राह्य विद्युत् लहरेंही हम तक उस वायुमंडल द्वारा पहुँच पातीं। बिजलीका बटन दबानेपर बल्बसे प्रकाश न होता बल्कि दीवार पर लगे हुए तारोंसे। यदि विद्युत्की

लहरें हमारी आँखोंको ग्राह्य होतीं तो तारोंकी भी आवश्यकता न होती। पदार्थोंके परमाणुओंके प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉनसे निकलने वाले प्रकाशसेही हम देख लेते। रात्रि और दिनका चक्रही हमारे लिए समाप्त होजाता। सदैव दिनही रहता।

चित्र ४७ और ४८ से स्पष्ट हो जायगा कि एक ही वस्तु दो प्रकारके कंपनोंको ग्रहण करके कैसी भिन्न-भिन्न आकृतिकी दिखाई पड़ती है। दोनोंही चित्र सूर्यके हैं और फोटो कैमरासे खींचे गये हैं। परंतु, चित्र ४७ में साधारण फोटो प्लेट पर लिया चित्र है, जिसमेंका प्लेट सूर्यके कुछ विशेष कम्पनोंको ही ग्रहण करता है, औरोंको नहीं। इस दूसरे चित्रमें केवल सूर्यके हाइड्रोजनके वाष्पोंके ही प्रकाश-कम्पन कैमराको ग्राह्य हुए हैं। इस प्रकार एक ही सूर्यके एक ही कैमरेसे दो भिन्न-भिन्न चित्र दो भिन्न-भिन्न प्रकारके प्लेटोंसे खींचे गये हैं। दोनोंका गोल आकार तो है, परंतु और सब बातें भिन्न हैं।

सूक्ष्मदृष्टि (क्लेअरवॉयन्स) में भी ठीक वही बात होती है। हमारे चारोंओर नाना प्रकारके कम्पन होते रहते हैं; उन सभीके प्रति साधारण मानवकी इन्द्रियाँ ग्रहणशील नहीं रहतीं। मानव, संसारके बहुत अंशके प्रति अंध और बधिर रहता है। यदि उसकी इन्द्रियाँ सभी कम्पनोंको ग्रहण कर पातीं, तो, वह सारा दृश्य उसे दिखाई और सुनाई
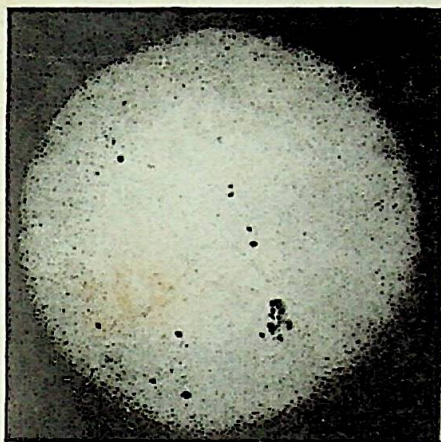
चित्र ४७

सूर्य अपने दाग़ों सहित

(साधारण कैमरे से)
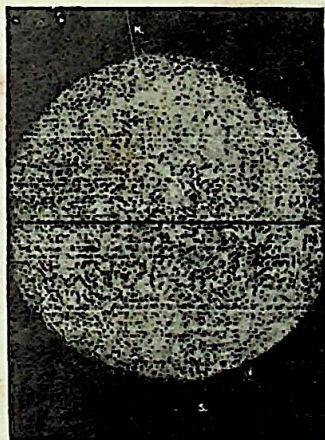
चित्र ४८

सूर्य

(स्पेक्ट्रो हेलिओग्राफ से)

पड़ता। किंतु सूक्ष्मद्रष्टाकी इन्द्रियाँ कुछ और कम्पनोंके प्रति भी ग्रहणशील होती हैं। इसलिए उसे संसारके अधिक भागका भान होता है। सभी सूक्ष्मद्रष्टा एकही प्रकारके नहीं होते; कुछको कम भान होता है, कुछको अधिक; कुछका ज्ञान स्पष्ट होता है, कुछका धुंधला या विकृत। परंतु सूक्ष्मदृष्टिका मौलिक नियम और क्रम वही है जो साधारण दृष्टिका। हमें अभी पता नहीं है कि ज्ञानतंतुओंका किस प्रकारका विशेष विकास होना चाहिए और मस्तिष्कके किन केन्द्रोंका जागरण होना चाहिए, ताकि अदृश्य जगत्के कम्पन हमको ग्राह्य हो जायँ। भविष्यका विज्ञान हमारे लिए मस्तिष्कका एक नया शरीरशास्त्र कदाचित् प्रस्तुत करेगा और तब हम सूक्ष्मदृष्टिके क्रमको ठीक-ठीक समझ सकेंगे।

विस्तृत, अदृश्य जगत्के विषयमें मैं केवल कही-सुनी बात नहीं कह रहा हूँ; अंशतः मैं अपने निरीक्षण और अनुभवकी ही बात कह रहा हूँ। मेरे मस्तिष्कके केन्द्रोंमें क्या विशेषता है, मैं कह नहीं सकता; परंतु मेरी चेतनामें कभी भी विस्मृत न होनेवाला एक तथ्य यह है कि मेरे चारोंओर, भीतर और बाहर, एक ऐसा अदृश्य जगत् है जिसका वर्णन कठिन है। उसका भान करनेके लिए मुझे कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता; जिस प्रकार आँख उठाकर किसी वस्तु विशेषको देखना होता है, उतना ही प्रयास उसको

जाननेके लिए मुझे करना पड़ता है। किंतु उसे आँखसे नहीं देखा जाता ; आँखें बंद हैं या खुली, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। चर्मचक्षुओंकी दृष्टिशक्ति और ये आभ्यंतरिक दृष्टि, दोनों एक दूसरेसे स्वतंत्र हैं; फिर भी दोनों एकही समयमें अपना कार्य करती रहती हैं। मेरी आँखें उस काग़ज़को देखती हैं, जिस पर मैं लिख रहा हूँ और साथ ही मेरी और कोई शक्ति—उसे क्या नाम दूँ, मैं नहीं जानता—ऊपर, नीचे, काग़ज़के भीतर-बाहर, मेज़में और कमरेके अदृश्यजगत्का अनुभव करती हैं। यह दूसरा जगत् प्रकाशमय है और ऐसा जान पड़ता है मानो उसके आकाशका प्रत्येक बिंदु स्वयं प्रकाशित आलोकका एक केन्द्र है और वह प्रकाश पृथ्वीके प्रकाशसे कुछ भिन्न प्रकारका है। वह सारा आकाश गतिशील भी है, मानों लंबाई, चौड़ाई, मोटाईके अतिरिक्त वह एक चौथी माप (dimension) भी हो। मैं बल देकर कहना चाहता हूँ कि मेरी चेतनाको, उस सबको जिसे मैं 'मैं' कहता हूँ, यह जगत् भौतिक जगत्से अधिक यथार्थ मालूम होता है। जब मैं उसे देखता हूँ और फिर अपने चर्मचक्षुओंसे पृथ्वी, आकाश, और मानव जगत्को देखता हूँ तो यह साधारण संसार मुझे भ्रमसा, माया-स्वरूप जान पड़ता है और इसमें वह कोई गुण नहीं मिलता जिसके कारण मेरी चेतना इसे यथार्थका नाम दे सके। हमारा साधारण जगत्,

जब मैं उसकी तुलना इस अदृश्य जगत्के उस अंशसे भी करता हूँ जिसे मैं देख पाता हूं, मुझे मृगतृष्णा, या छाया या स्वप्नसे भी कुछ कम यथार्थ जान पड़ता है; यह मेरे मस्तिष्क का एक विचार-मात्र भी नहीं जान पड़ता। फिर भी हमारा भौतिक जगत् काफी यथार्थ है; मेरे लिए यथार्थ है क्योंकि जावाकी पहाड़ियोंके बीच बैठा मैं इसे लिख रहा हूँ और मच्छड़ मुझे काट रहे हैं और उनके दंशका मुझे पूर्णरीतिसे ज्ञान है। भविष्यमें, कभी जब अवसर मिले, तो कदाचित् मैं इस जन्मजात शक्तिका विकास कर सकूँ और इस प्रकार अदृश्यजगत्संबंधी जो तथ्य अन्य थिऑसोफीके शोधन-कर्ताओंने एकत्रित किये हैं उनमें कुछ वृद्धि कर सकूँ।

थिऑसोफीकी परम्पराके वैज्ञानिकों द्वारा एकत्रित तथ्य हमें बतलाते हैं कि हमारा भौतिक स्थूल जगत संपूर्ण जगत्का एक अंशमात्र है और इस जगत्को भीतर बाहर व्याप्त किये हुए, अनेक अदृश्य जगत् हैं। ये सभी जगत् सूक्ष्म पदार्थोंके बने हुए हैं, केवल कल्पना नहीं हैं; परन्तु उनका पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म है, हमारे साधारण जगत्के पदार्थसे अत्यंत सूक्ष्म। ठोस और तरल रूपके पदार्थसे तो हम भलीभाँति परिचित हैं ही; वायु सरीखे पदार्थका ज्ञान यों हमारी चेतनाको प्रत्येक क्षण नहीं रहता, परंतु जब हवा चलती है, या कोई वायु विशेष हमारी श्वासाको कष्ट देता है तब हमें उसका भान होता है।

इस वायुरूपी द्रव्यसे परे जड़ पदार्थकी और भी स्थिति होती है, ऐसा आधुनिक विज्ञानने स्वीकार किया है ; एक वार इन्हें अंग्रेज वैज्ञानिक क्रुक्सने 'दिव्य' (चमकते हुए) पदार्थ नाम दिया था । ईथर भी पदार्थका ही एक चमकदार स्वरूप है, यद्यपि

चित्र ४९

उसके गुण जिस 'पदार्थ' को हम साधारणतया जानते हैं, उससे भिन्न हैं। थिऑसोफीमें इस समस्त प्रकृतिकी भिन्न-भिन्न दशाओंका वर्णन छानबीन करके किया गया है और अदृश्य जगत्के संबंधकी कुछ बातें चित्र ४९ से मालूम होंगी।

सात लोक या भूमिकाएँ हैं जिनसे मनुष्यका विशेष संबंध है और प्रत्येक व्यक्तिके जीवनका कुछ अंश या कोई अवस्था इन लोकोंमें व्यतीत होती है। तीन निचले लोकोंमें व्यक्तिका अपना एक-एक शरीर उसी लोककी प्रकृति या पदार्थ का बना हुआ रहता है और इस शरीरके द्वारा उस लोकमें वह अपने संबंध स्थापित या कार्य कर सकता है। इस प्रकार हममेंसे प्रत्येकका एक स्थूल शरीर है, जो स्थूल प्रकृतिके सातों प्रकारोंसे बना हुआ है और इस शरीरके द्वारा हम स्थूल जगत् का अनुभव प्राप्त करते हैं। इसी तरह वासनालोक (भुवर्लोक) की प्रकृतिका बना एक शरीर है और एक मनोमय लोकके पदार्थका शरीर है और एक "कारण" शरीर। (पीछे चित्र २८ देखिये।) प्रत्येक अदृश्य शरीर हमारे स्थूल शरीरके ही समान भलीप्रकार सुसंगठित है; इन अदृश्य शरीरोंका भी शारीरिक शास्त्र उसी प्रकार अत्यन्त दुरूह है जैसे स्थूल शरीर का। मनोमयलोकके ऊपरके लोकों पर मानवकी चेतना अभी अंकुरवत् है और अभी उनलोकोंके योग्य उसके शरीर संगठित नहीं हुए हैं।

जैसा कि चित्र ४९ में दिखाया है प्रत्येक लोक एक दूसरेसे पृथक्-पृथक् है। हमारे स्थूल जगतकी प्रकाश, ताप और विद्युत्की प्राकृतिक घटनाएँ स्थूल पदार्थसेही संबंधित हैं और इनका प्रभाव अन्य लोकों पर (यथा मनोमय लोक पर) नहीं पड़ता। जैसे स्थूल पदार्थोंके ठोस, तरल तथा वायु रूपोंके संबंधमें नियम हैं उसी प्रकारके नियम अन्य लोकोंके पदार्थोंके सम्बन्धमें भी हैं। प्रत्येक लोककी प्रकृतिकी सात अवस्थाएँ या उपलोक होते हैं। हमारे भूलोकके पदार्थकी ठोस, द्रव, वायु, ये तीनही अवस्थाएँ नहीं हैं ; अपितु चार और अवस्थाएँ हैं, जिन्हें ईथरीय, पराईथरीय, उपएटमिक, और एटमिक नाम दिया है। (यहाँ यह ध्यानमें रखने योग्य बात है कि यह ईथर हमारे भूलोकके पदार्थकी एक अवस्था है। इसका संबंध उस ईथर, आकाशतत्वसे नहीं है जिसमें होकर ताराओंसे प्रकाश हम तक पहुँचता है।)

प्रत्येक लोकके उच्चतम् उपलोकको एटमिक कहा है क्योंकि इस लोकके कण अणुरूप न होकर परमाणुहीके रूपमें हैं। प्रत्येक परमाणु अविभाजनीय रूपमें है।

ये सारे अदृश्य जगत् हमारे चारों ओर अभी भी उपस्थित हैं। ये कहीं दूर नहीं हैं। भुवर्लोक और उसके निवासी निरन्तर हमारे आसपास बने रहते हैं, यद्यपि हममें से अधिकांश लोग उनसे सर्वथा अनभिज्ञ रहते हैं। इसी प्रकार स्वर्लोक भी हमारे

समीप ही है ; यदि हमारी अंतर्दृष्टि जागृत होती तो हम समस्त स्वर्ग-सुखका अनुभव अभी और यहीं कर पाते। यह कैसे संभव है कि हमारे कमरे, हमारे बागों, हमारी सड़कों और हमारे नगरोंमें दूसरे जगत् भी मौजूद हों? कई लोक एक ही स्थान पर किस प्रकार हो सकते हैं?

ये एक ही स्थान पर रह सकते हैं, क्योंकि एक ऊँचे लोककी प्रकृति, दूसरे निचले लोककी प्रकृतिसे सूक्ष्मतर होती है। यदि हम तीनों निचले लोकोंकी प्रकृतिकी तुलना, भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोककी प्रकृतिका मिलान, भूलोकके पदार्थ के तीन सुपरिचित स्वरूपोंसे करें, भूलोककी ठोससे, भुवर्लोककी तरलसे, और स्वर्लोककी वायुसे, तो हम समझ सकेंगे कि ये तीनों अवस्थाकी प्रकृति एकही स्थानपर रह सकती है। एक बोतलमें बालू भरा जाय, फिर उसमें जल डाला जाय, फिर वायु उसमें पहुँचाई जाय तो ये तीनों रूपके पदार्थ एक ही स्थानमें अँट सकेंगे। बालूमें जगह खाली थी जल वहाँ फैल गया ; फिर भी कुछ जगह थी, उन संधियोंमें वायु घुस गयी। एक ही बोतलमें बालू, जल और वायु तीनों प्रायः एक ही स्थानमें हैं।

एक और उपमासे हम इसे समझनेकी चेष्टा कर सकते हैं। यदि पुराने ढंगके गोल तोपके बड़े गोलोंसे एक कमरेको भरा जाय, तो गोलाकार होनेके कारण वे गोले सब जगहको

भर न देंगे ; उनके बीच-बीच खाली जगहें रहेंगी। यदि उनमें हम छोटे छर्रे डालें, तो वे छर्रे इन संधियोंमें भर जायँगे। ये छर्रे हिलडुल भी सकेंगे। फिर भी इतनी संधि इन छर्रों और गोलोंके बीच खाली रहेगी कि लाखों कीटाणु उस कमरेमें और पहुँचाये और भरे जा सकेंगे। इन कीटाणुओंको इधर-उधर चलने-फिरनेमें असुविधा न होगी।

इसीसे कुछ-कुछ भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोकका एक ही स्थान पर होना समझा जा सकता है। हमारे इस भूलोककी प्रकृतिमें सूक्ष्म रिक्त स्थान है, उसीमें ऊँचे लोकोंका पदार्थ रहता है। जैसे एक तारकी छन्नीमें होकर अरगॉन (वातावरणकी एक विरली वायु)का परमाणु बिना कठिनाईके इधर-उधर आर-पार जा सकेगा और किसी अन्य परमाणुसे मिश्रित न हो सकनेके कारण छन्नीके तार और अरगॉन एक दूसरेसे पृथक्ही रहेंगे, वैसेही भुवर्लोक आदि अन्य लोकोंके प्राणी हमारे आस-पास जीवनयापन करते हैं और न हम उन्हें जानते हैं और न वे हमको। किसी विशेष परिस्थितिमें ही एक दूसरेको जान पाते है।

कल्पना करें कि कोई मनुष्य भुवर्लोक और स्वर्लोकके स्पंदनको ग्रहण करसकता है, इसलिए वह इन लोकोंको 'देख' सकता है। मानलें कि उसकी ऐसी शिक्षा हुई है कि वह ठीक-ठीक निरीक्षण कर सकता है और जो कुछ देखता है

उस पर कोई निश्चित मत प्रकट कर सकता है। ऐसा आदमी क्या देखेगा? वह बहुतसे दृश्य देखेगा, जिन्हें समझने और जिनका वर्गीकरण करनेमें उसे सालों लग जायँगे। पहिले तो वहाँ उसे उसके वे मित्र और परिचित जीते-जागते मिलेंगे, जिन्हें वह 'मृत' समझता था। वे कहीं दूर स्वर्ग या नर्कमें नहीं, यहीं हमारे आस-पास अदृश्य सूक्ष्म लोकोंमें हैं। वह इन 'मृत' लोगोंको सुखी, या साधारणतया संतुष्ट, या थके, या दुःखी पायेगा। वह देखेगा कि इस प्रकारके सुखी या दुःखी जीव भुवर्लोक और स्वर्लोकके पृथक-पृथक उपलोकोंमें पाये जाते हैं। वह यह भी देखेगा कि ये लोक पृथ्वीके भूमंडलसे कितनी दूर तक फैले हुए हैं और इस प्रकार वह यहाँके इस अदृश्य जगत्का एक भौगोलिक नक्शा भी अपने लिए बना लेगा।

वह देखेगा कि भुवर्लोकके सबसे निचले उपलोक या विभागमें थोड़े समयके लिए अत्यंत दुःखी स्त्री-पुरुष रहते हैं और यह लोक सचमुच नर्क है; इससे ऊँचा भाग भुवर्लोकका एक प्रकारका परिष्कार स्थान (पर्गेटरी) है और उससे भी ऊँचा विभाग वह सुंदर देश है जिसे प्रेतावाहनके साधकोंमें 'समरलैण्ड' या वसंतऋतुका देश कहा जाता है। यदि और भी ऊँची निरीक्षणशक्ति उसकी हो, तो वह अदृश्य जगत्के ऊँचे लोकोंमें स्वर्गभोगसे सुखी जीवोंको देखेगा

"तीन लोकों"के निवासी

उच्च स्वर्ग	सिद्ध पुरुष तथा दीक्षित शिष्य उन्नत जीव साधारण जीव		पहिला तात्विक सत्त्व	अरूप देव गण
निचला स्वर्ग	मनुष्य तथा व्यक्तीकृतपशु 'देवचनमें'	दार्शनिक कला प्रेमी परोपकारी भक्तिपूर्ण प्रेमी	दूसरा तात्विक सत्त्व — विचाररूप	रूप देव गण
भुवर्लोक	मनुष्य पशु (सोये हुए और मृत्युके बाद कुछ समयके लिए) — परित्यक्त वासनाशरीर, प्रेत		तीसरा तात्विक सत्त्व — विचार रूप एलीमेंटल्स	कामदेव — वनदेवी आदि
भूलोक	एटमिक उपएटमिक पराईथरीय ईथरीय	श्मशानके प्रेत मानव	निम्न-कोटिके ईथरीय रूप एली-मेंटल्स	प्रकृतिके देव-देवी १ मेघके देव २ अग्निके देव ३ जल देवियाँ ४ स्थलकी परियाँ ५ पृथ्वीके भीतर की देवियाँ
	वायुवत् तरल ठोस	पशु वृक्ष	खनिज जीवन	

चित्र ५०

यद्यपि यह सुख बहुतकुछ साम्प्रदायिक कल्पनाओंसे भिन्न प्रकारका दिखेगा। इस प्रकार अदृश्य जगत्को देखकर मृत्यु और जीवनका रहस्य कुछ-कुछ उसकी समझमें आने लगेगा।

चित्र ९० में तीनों लोकके निवासियोंका एक संक्षिप्त नक्शा बनाया गया है। भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक तीनों का इसमें वर्णन है। तीन पृथक्-पृथक् कोटिके विकासशील प्राणी इन लोकोंमें साथ-साथ रहते हैं; (१) मानव तथा व्यक्तीकृत पशुजीव (२) तात्विक सत्त्व तथा खनिज जीवन और (३) देव जगत्। इस दूसरे कोटिका समझना सबसे कठिन है क्योंकि इस कोटिके जीवनने ठीक-ठीक रूप धारण नहीं किया है। भुवर्लोक और स्वर्लोककी प्रकृति, प्रकृतिरूपेण बिना उसको धारण करनेवाले जीवका विचार किये, स्वयं एक विशेष प्रकारके जीवनसे अनुप्राणित है जो जीवन ग्रहणशील है, सप्राण है, किंतु व्यक्तीकृत नहीं है। एक प्यालेमें के जलके कण क्या अनुभव करते होंगे जब विद्युत्-लहर उनमें होकर चलती है, यदि हम इसकी कल्पना करें तो हमें एक धुंधलासा ज्ञान उस सजीवताका होगा जो स्वर्लोक और भुवर्लोकके प्रकृतिकी होती है जब उसमें पहिले, दूसरे और तीसरे प्रकारके 'तात्विक सत्त्व'-का संचार होता है।

यह 'तात्विक सत्त्व' एक प्रकारकी परिवर्तनशील अवस्थामें

रहता है; जैसेही किसी विचारकके मनका कम्पन उस पर पड़ा वह 'विचार रूप'में परिणत हो जाता है। विचारके गुण, प्रकार और शक्तिके अनुसार जिन्हें तात्विक सत्व भुवर्लोक और स्वर्लोकके प्रकृतिसे बनाते हैं। ये विचाररूप क्षणिक होते हैं या घण्टों महीनों या सालों तक बने रहते हैं; इसलिए इन्हें भी अदृश्य लोकोंके निवासियोंमें सम्मिलित किया जा सकता है। इन्हें 'एलीमेंटल' कहते हैं।

स्थूल प्रकृतिके ईथरीय प्रकारके बने रूपभी इसी प्रकारके अविभक्त कोटिके जीवनके होते हैं। खनिजका जीवन अधिक विभक्त और सुनिश्चित होता है। खनिजके अस्तित्वके दो पहलू हैं—एक तो उसका रूप या आकार और दूसरा उसका जीवन; रूपकी दृष्टिसे वह अनेक रासायनिक पदार्थोंके सम्मिश्रणसे बना होता है; जीवनकी दृष्टिसे वह एक विकासशील जीवन है, जिसमें प्रकृतिसे निश्चित ज्यामितिके आकारके अनुकूल रवे बनानेकी शक्ति होती है।

इस चित्र (९०) के दूसरे खानेमें देखनेसे पता चलेगा कि स्थूल निवासियोंके रूपमें खनिज, वनस्पति, पशु और मनुष्य रहते हैं। अस्थायी रूपसे कुछ सप्ताह, या महीनों तक विघटित होते हुए स्थूल शरीरके ईथरीय प्रतिरूप, भी यहाँके निवासी होते हैं। ये श्मशान और क़ब्रिस्तानमें जहाँ किसी अविकसित मनुष्यका शव जलाया या गड़ा होता है, घूमते रहते

हैं। ये ईथरीय प्रतिरूप स्थूलशरीरके ही समान होते हैं और एक प्रकारके स्थूल प्रकृतिके ही बने होते हैं, कभी-कभी ये ग्रहणशील व्यक्तियोंको दिख जाते हैं और लोग समझते हैं कि ये मृतात्माएँ हैं।

भुवर्लोकमें अस्थायी रूपसे वे सब मनुष्य और पशु रहते हैं जो निद्राकी अवस्थामें रहते हैं और जिनके अदृश्य शरीर थोड़े समयके लिए स्थूल शरीरसे विलग होजाते हैं। जब हम यहाँ सोये रहते हैं तो भुवर्लोकमें हम अपने वासनाशरीरमें, या तो पूर्णतया जाग्रत और चेतनावस्थामें या अर्धजागृत अवस्थामें, अपनी विकासावस्थाके अनुसार, रहते हैं। जब हम भूलोकमें जागते रहते हैं तब अदृश्यशरीर इस स्थूलशरीरसे जुड़ जाते हैं और हमारी चेतना भुवर्लोकसे लुप्त हो जाती है। मृत लोग भी कुछ कालके लिए अस्थायी रूपसे भुवर्लोकमें अपने वासनाशरीरमें रहते हैं, जैसा नक्शेमें बताया गया है। थोड़े समयके बाद वे स्वर्लोकमें चले जाते हैं। यह अस्थायी निवासका काल कुछ घंटोंसे लेकर कई वर्षों तक हो सकता है (देखिये चित्र नं० ९४)।

'परित्यक्त वासनाशरीर' बड़ा ही उचित नामकरण है। जैसे हम मरनेपर अपने स्थूलशरीरको परित्याग कर देते हैं और कुछ समय भुवर्लोकमें रहते हैं, वैसेही जब हम भुवर्लोकको छोड़कर स्वर्लोकको जाते हैं, तो हमारे वासना-शरीर भुवर्लोकमें

ही छुट जाते हैं। किंतु ये परित्यक्त वासनाशरीर हमारे परित्यक्त स्थूलशरीरसे इस बातमें भिन्न होते हैं कि उनमें कुछ जीवनकी चेतना शेष रहती है। इसलिए उनमें कुछ स्मृति भी रहती है और कुछ दिन तक वे मृत पुरुषकी तरह व्यवहार भी करते हैं। ये भूतोंके रूपमें अक्सर प्रेतावाहन मंडलोंमें प्रकट होते हैं और लोग उन्हें मृतात्माएँ समझते हैं, किंतु वे उनकी छाया मात्र होते हैं। यदि उनको कृत्रिम रूपसे अनुप्राणित न किया जाय, जैसा कि इन प्रेतावाहन मंडलोंमें होता है, तो वे थोड़े ही दिनोंमें विघटित होकर नष्ट हो जाते हैं। कितने दिनोंमें नष्ट होंगे, कुछ घंटोंमें, कुछ दिनों या महीनोंमें, या सालोंमें, यह जीवके स्वभाव और विकास पर निर्भर रहता है।

स्वर्लोककी सात उपभूमिकाओंके दो विभाग हैं, तीन ऊँची भूमिकाओंका उच्चतर स्वर्ग, और चार नीची भूमिकाओंका निम्नतर स्वर्ग। इस निम्नतर स्वर्गको 'देवचन' कहते हैं; यह आनंदका स्थान है, इसमें मृत्युके उपरांत जीव सुखी अवस्थामें पाये जाते हैं और वहाँके स्वर्गसुखोंका वर्णन अनेक धर्मोंमें किया गया है। यहाँ वे पशुजीव भी मिलते हैं जिनका व्यक्तीकरण मृत्युसे पहिले हो चुका है और जो अब मानव-जीव हैं, यद्यपि अभी उन्होंने मानवशरीर एक बार भी धारण नहीं किया है। इस विभागकी सबसे नीची भूमिकामें वे

स्त्री-पुरुष और बच्चे रहते हैं जिनके स्वभावमें, स्थूलशरीरके जीवनमें, प्रेमकी प्रधानता थी, चाहे इस प्रेमका प्रकट रूप संकीर्ण ही रहा हो। ये यहाँ शताब्दियों तक उन प्रेमपात्रोंके संपर्कमें रहते हैं, जिनको प्रेम करना ही इनका सबसे बड़ा स्वर्गसुखका स्वप्न था। इससे ऊँची दूसरी भूमिका पर वे रहते हैं जिनके प्रेममें धार्मिक श्रद्धा-भक्ति भी मिश्रित थी। इससे भी ऊँची भूमिका पर परोपकाररत प्रेमी भक्तगण रहते हैं और चौथी भूमिका पर वे जीव रहते हैं जिनमें इन सुंदर गुणोंके अतिरिक्त कुछ दार्शनिकता, कलाप्रेम या वैज्ञानिकताका पुट पार्थिव जीवनमें रहा होता है।

दूसरे विभाग, ऊँचे स्वर्गमें हमारे मानवजातिके समस्त जीव सदैव रहते हैं। यहाँ वे अपने 'व्यक्तित्व'के रूपमें रहते हैं। इस व्यक्तित्वमें उनकी समस्त योग्यता तथा विकासक्रममें विकसित चेतना निहित रहती है। यहींसे अपने व्यक्तित्वसे उतरकर, प्रत्येक जीव जगत्में अंशरूप अवतीर्ण होता है; अपने 'देहात्मा' को, जो उसका अंश-स्वरूप है, निचली भूमिकाओंमें अनुभव प्राप्त करनेके लिए भेजता है। इस विभागकी सबसे ऊँची भूमिका पर सिद्ध महात्मा तथा उनके दीक्षित शिष्य निवास करते हैं; इससे नीचेवाली भूमिका पर सुसंस्कृत और परिष्कृत सभ्य जीव निवास करते हैं और तीसरी भूमिका पर छः खर्ब जीवोंमें से शेष अधिकांश जीव अपने व्यक्तित्वके

स्वरूपमें रहते हैं। यही छः खर्ब जीवोंकी हमारी मानव जाति (ह्युमैनिटी) है।

दृश्य और अदृश्य जगत्के जिस जीवनका अबतक वर्णन किया गया है उससे पृथक देव-जगत्का विकासक्रम है। उच्च स्वर्गमें इन देवताओंके उच्च श्रेणीके 'अरूप' देवोंका भी निवास रहता है। इन्हें 'अरूप' देव इसलिए कहते हैं कि इनके शरीर स्वर्लोककी प्रकृतिकी तीन उच्च भूमिकाओंकी प्रकृतिके बने होते हैं। इस प्रकृतिमें विचारके स्पष्ट रूप नहीं बनते, वहाँ विचार दुरूह कंपनों और स्पंदनोंसे ही व्यक्त होता है। निचली चार भूमिकाओंमें 'रूपदेवों' का निवास है; इस लोकको 'रूप' भूमिका इसलिए कहते हैं कि यहाँ विचार 'रूप' द्वारा व्यक्त होते हैं।

भुवर्लोकमें एक और निम्नकोटिका देवसमूह निवास करता है, जिन्हें 'काम' देव कहते हैं। इन्हें 'काम' देव इसलिए कहा कि यह लोक मूलतः कामनाओं और वासनाओंका लोक है, जहाँ अहंमें केंद्रित संवेगोंकी ही बहुतायत रहती है। इस लोक तथा स्थूल जगत्की ईथरीय भूमिकाओं पर और छोटे-छोटे देव-देवी, जिन्हें 'नेचरस्पिरिट' या वनदेव वनदेवी आदि कह सकते हैं, रहते हैं। ऊँचे देवताओंसे उनका वही संबंध रहता है जो पालतू पशुओंका, कुत्ते बिल्लीका, अपने स्वामीसे। ये छोटे-छोटे देवता, जिनमें बुद्धिकी मात्रा

भी यथेष्ट रहती है, अभी व्यक्तीकृत नहीं हैं, वे भी पशुओंके समान समूहात्माके ही अंग हैं। देव विशेषके प्रति श्रद्धाभक्तिके द्वारा ही इनका व्यक्तीकरण होता है, ठीक जैसे हमारे पालतू कुत्ते-बिल्ली आदि हमारे प्रति श्रद्धा-भक्तिके द्वारा व्यक्तीकृत होते हैं।

चित्र ४९ में प्रदर्शित अदृश्य लोक वे हैं जो हमारे सूर्य मंडलकी सीमाके भीतर हैं। सूर्य मंडलके बाहरभी अन्यलोक हैं और वे इतने ऊँचे और परे हैं कि उनको थिऑसोफीके साहित्य में विश्वलोक या कॉस्मिक प्लेन कहा जाता है। इन विश्व-लोकोंकी भी सात भूमिकाएँ या उपलोक हैं और प्रत्येक विश्व-लोककी सबसे निचली भूमिका हमारे सौरमंडलके सात लोकोंका उच्चतम प्रथम उपलोक—एटमिक होता है। यह कल्पना अधिक स्पष्ट हो जायगी यदि हम ४९ वें और ५१ वें चित्रोंका अध्य-यन मिलान करके करें। *पाँचवे विश्वलोक या विश्वलोकके मनोलोक पर संपूर्ण विकासक्रमका निश्चित चित्र रहता है। यह चित्र स्वयं ईश्वर (लोगॉस) का इस संबंधका संकल्प है कि आरम्भसे अन्त तक विकासक्रम किस प्रकार चलेगा। ईश्वरके इस 'मानस पटल' पर वे विचार चित्रित रहते हैं जिन्हें प्लेटोने 'आर्केटाइप्स'की संज्ञा दी है। यहाँ पर 'जैसा आरम्भमें था आज भी है, और सदा रहेगा' इस कथनकी सत्यता मूर्त स्वरूप धारण किये हुए है।

---

* यह गिन्ती ऊपर से अर्थात् सबसे सूक्ष्मलोक से प्रारंभ होती है:

सूर्यमंडलके लोकों और विश्वलोकोंके दोनों चित्रोंके निरीक्षणसे ज्ञात होगा कि हमारे मनोलोककी उच्चतम भूमिकाही
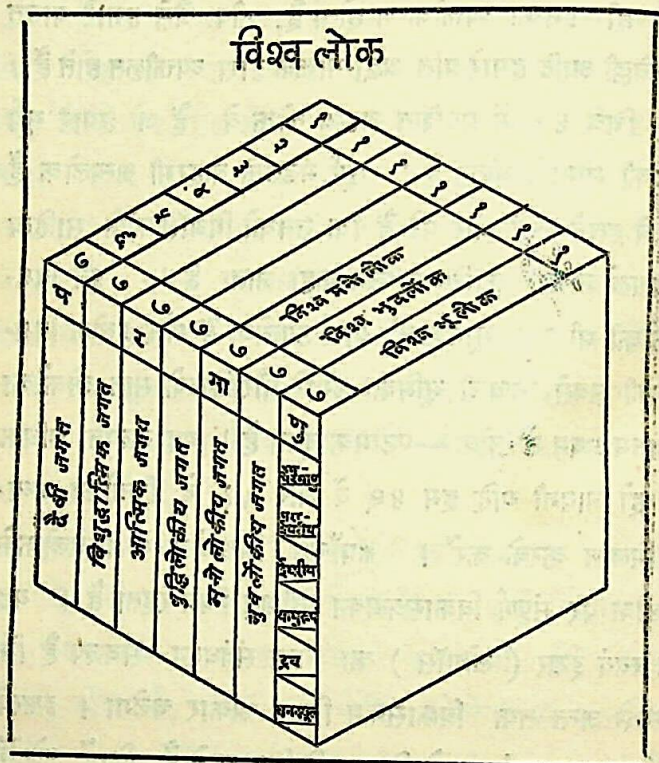
चित्र ५१

विश्वमनोलोककी सबसे निचली भूमिका है। इससे एक बड़े विचित्र तथ्यका ज्ञान होता है ; वह यह कि जो कोई अपनी चेतनाको मनोलोककी उच्चतम् भूमिका तक उठा सकता है

उसे विश्वमनोलोकपरके दैवी कल्पनाके चित्रोंके (archetypes) प्रत्यक्ष दर्शन हो सकते हैं। वह उनकी शक्ति और वैभवसे अनुप्राणित हो सकता है। जिस प्रकार गहन कूपकी तलहटीके स्थिर जलमें सूर्यास्तके सुन्दर विविध रङ्ग प्रतिबिंबित होजाते हैं यद्यपि आकाश से कूपकी तलहटी अत्यन्त दूरीपर रहती है, उसी प्रकार जीवकी परिष्कृत बुद्धि और आध्यात्मिक भावनाको उस शाश्वत-वर्तमानके दर्शन होसकते हैं—यह शाश्वत अवस्थाही हमारा भविष्य है और एक दिन इस गौरव और दिव्य रूपके हम सबको दर्शन होंगे। इसी ढङ्गसे बड़े-बड़े कलाकारोंको अनन्त तथा शाश्वत सौंदर्यके दर्शन उनकी अन्त:प्रज्ञाके द्वारा होते हैं और जिससे वे हमारे लिए कलाकी कृतियोंका सृजन करते हैं जिनमें सौदर्य और ज्ञान, कर्म और त्यागका एकत्र समन्वय होता है।

ऐसे हैं वे अदृश्य और दृश्यलोक जिनके सबसे नीचे के विभाग में हम अपनी ऐहिक लीला करते और मृत होते हैं। परन्तु हमारी अमर आत्माओंकी पैतृक संपत्ति वह समस्त अदृश्य विश्व है जिसमें ज्यों-ज्यों हम ज्ञान-विकासके पथपर अग्रसर होते जायँगे, हमारे अनेक अनुभव उस दैवी क्षेत्रके, स्वर्गीय कृतियों-के मध्यमें होंगे। उस विशाल अदृश्य जगत्की एक छोटीसी झलक भी हमारी मानवीय दृष्टिको शुद्ध करदेती है और हमें जीवन और जगत् तथा विकासकी वह कल्पना प्रदान करती है जिसका सौंदर्य फिर कभीभी दृष्टिसे सर्वथा ओझल नहीं

होता। मानवके समस्त संदेह, सूर्य निकलनेपर मिटते हुए कुहासेके समान, नष्ट होजाते हैं, जब मनुष्य स्वयं अपनी आँखोंसे देख लेता है और यह निरी विश्वासकी बात न रहकर आँखों देखी घटना होजाती है।

यद्यपि हममेंसे अधिकांश लोगों के लिए यह प्रत्यक्ष दर्शन अभी अप्राप्य है फिरभी एक और परिष्कृत बुद्धि तथा सुसंस्कृत अन्तर्ज्ञानका दर्शन है, जो मृत्युलोकमें हमारे लिए मार्गदर्शकका काम करता है। यदि ब्रह्मविद्या, थिऑसोफी, हम सबको तत्काल वह प्रत्यक्ष दर्शन नहीं करा सकती, तो भी वह कमसे कम एक ऐसा जीवन-दर्शन अवश्य प्रस्तुत करती है जिससे वस्तुओं-के वास्तविक स्वरूपकी हमको एक झलक मिलती है और जिससे हम अपने जीवनमें अनुप्राणित और उत्साहित होते हैं। ऐसी प्रेरणा हमको अन्य किसी जीवन-दर्शनसे प्राप्त होती दिखाई नहीं देती। जब तक सभी वह प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त नहीं कर सकते, तब तक थिऑसोफीका इतनाही न्याय्य दावा हो सकता है कि थिऑसोफी मनुष्यकी जिज्ञासाप्रिय आकांक्षाको अदृश्य जगत्का एक धुन्धला चित्र तो अवश्य दिखा देती है।

छठवाँ अध्याय

जीवन और मृत्युमें मानव

विकासकी आधुनिक कल्पनामें यह एक स्वयंसिद्धसी बात है कि जितनेहीं विभिन्न कार्य एक शरीर कर सकता है उतनी ही दुरूह उसकी बनावट होती है। इसलिए यह ठीक ही है कि मानवशरीरमें अन्य कम विकसित जीवोंके शरीरसे अधिक दुरूहता हो। लेकिन मानवशरीरकी जो दुरूहता हम उसकी वनावटमें पाते हैं वह मानवकी वास्तविक दुरूहताका एक अंशमात्र ही है; आधुनिक मनोविज्ञान भी हमको मनुष्यके मनके संबंधमें जो कुछ वताता है, उससे भी कहीं अधिक दुरूहता मानवमें थिऑसोफीके अध्ययनसे प्रकट होती है।

चित्र ९२ में थिऑसोफीकी दृष्टिसे मानवके संबंधमें मुख्य-मुख्य बातें बताई गई हैं। किसी व्यक्तिके जन्मके समय, जिसे हम 'मनुष्य' कहते हैं उस इकाईके बनानेमें बहुतसे, तत्व काममें आते हैं। वे यों हैं :—

१. जीवात्मा, मनुष्यका आत्मा जिसका एक अंश ही

स्थूलशरीरमें व्यक्त हो पाता है। इसी जीवात्माको 'व्यक्तित्व' भी कहते हैं।

२. व्यक्तित्वका वह भाग जो किसी समय-विशेष पर, किसी जाति विशेषमें पुरुष या नारी रूपमें अवतीर्ण होता है। यह देहात्मा कहलाता है।
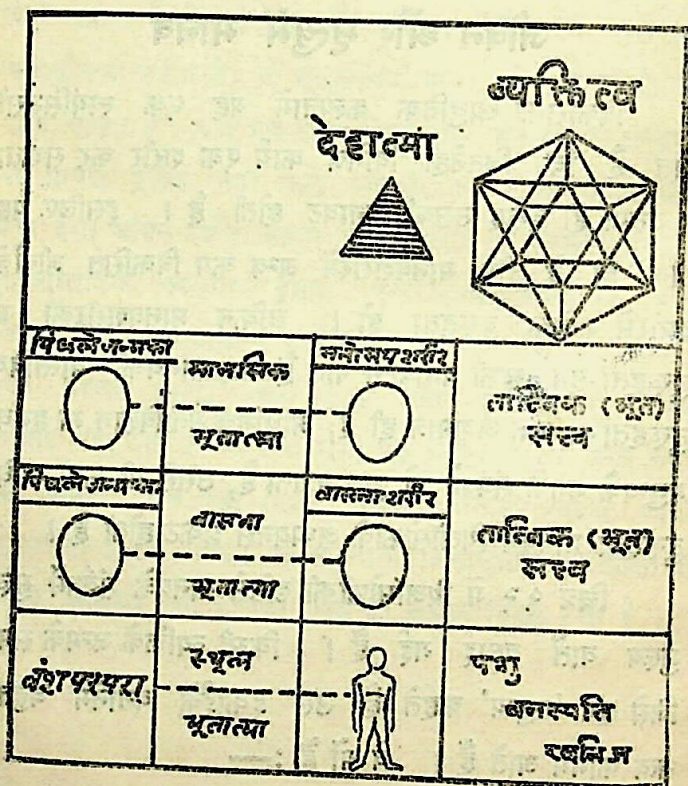
चित्र ६२

जीवात्मा (व्यक्तित्व) और देहात्माके संबंधका वर्णन कई प्रकारसे किया गया है। एक वर्णन मोतियोंकी मालाका है—सूत्र है व्यक्तित्व या जीवात्मा, और मोती प्रत्येक देहात्मा। इसका दूसरा प्रतीक बीस पहलूका एक ठोस घन है। (चित्र ९२) जिसमें प्रत्येक एकही आकारका पहलू देहात्मा है और समूचा घन व्यक्तित्व या जीवात्मा।

उसके पहलुओंके बीसों त्रिभुज यदि एक दूसरेके पास कतारमें रख दिये जायँ तो भी वे समस्त घनका पूर्ण प्रतीकत्व न कर सकेंगे, क्योंकि उस ठोसका घनत्वका गुण उनमें न होगा; घनके प्रत्येक पहलूमें से अगणित त्रिभुज अलग किये जा सकते हैं। ठीक इसी तरह प्रत्येक देहात्मा या वे सब देहात्माएँ मिलकर भी, जिनमें वह जीवात्मा भिन्न-भिन्न जन्मोंमें अवतीर्ण होता है, जीवात्माके पूर्णत्वका प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते—उस जीवात्माके कुछ गुण विशेष प्रकट नहीं कर पाते। जीवात्मा अगणित देहात्माओंको समय-समय पर धारण कर सकता है—इस क्रियासे उसका जीवात्मा होनेके गुणका ह्रास नहीं होता।

किंतु किसी एक जन्ममें कार्य करनेके लिए जीवात्मा एकही देहात्मा धारण करता है।

३. देहात्मा (चित्र ९२—तीसरा खाना) जन्म लेते समय एक मनोमय देह, एक वासना देह और एक स्थूल देह धारण करता है।

४. प्रत्येक देहका अपना निजी जीवन होता है और उसकी अपनी निजी चेतना भी होती है। यह जीवन और चेतना देहात्माके जीवन और चेतनाके अतिरिक्त होती है। प्रत्येक देहके 'देह-चैतन्य'को थिऑसोफीके साहित्यमें क्रमशः मनोमय भूतात्मा, वासनामय भूतात्मा तथा स्थूल भूतात्मा कहते हैं। यह 'देह-चैतन्य' मनोमयलोककी और भुवर्लोककी प्रकृति तात्त्विकसत्त्वका तथा खनिज, वनस्पति, और पशु, जगतकी धाराओंका जीवन है। स्थूलशरीर इन्हीं तीन अन्तिम धाराओंसे बना होता है।

५. हमारा स्थूल शरीर जो हमें अपने माता-पितासे मिलता है हमारे पैतृक 'जेनीज' (Genes) का भण्डार होता है; इन्हीं माता-पिताके 'जेनीज़'में से कुछ चुनकर गर्भाधानके समय भ्रूण बनता है। इन 'जेनीज़'का चुनाव जीवात्माके कर्मानुसार होता है और वे ऐसे होते हैं, जो उस देहात्माविशेषके कार्यमें सहायक हों।

६. वासनाशरीर और मनोमयशरीरमें भी कुछ पैतृक अंश होता है, किन्तु देहात्मा इन्हें माता-पितासे न पाकर जीवात्मासे ही प्राप्त करता है। जिन वासना और मनोमय देहोंको लेकर बच्चा जन्म लेता है, वे पिछले जन्मके वासनादेह तथा मनोमयदेहके ठीक प्रतिरूप होते हैं, जिनका, स्वर्लोकमें प्रविष्ट होते समय और फिर स्वर्गीय जीवनकी समाप्तिपर, गत जन्मके

देहात्माने परित्याग किया था।

इस प्रकार थिऑसोफीकी दृष्टिसे निरीक्षण करनेपर मनुष्य एक अत्यंत दूरूह व्यक्ति दिखता है, जो तीनों लोकोंकी अनेक शक्तियोंके समन्वयका परिणाम है। अपने क्रमबद्ध अध्ययनके लिए हम इन शक्तियोंका वर्गीकरण इस प्रकार कर सकते हैं:—

(१) जीवात्मा, जो अपने स्थायी कारणशरीरमें जन्म जन्मांतर जीवित रहता है और अपनी देहात्माओंके अनुभवकी स्मृति उसे बनी रहती है।

(२) देहात्मा, जो जीवात्माका अंशरूपमें ही प्रतिनिधि होता है।

(३) तीनों शरीरों (मनोमय, वासना और स्थूल) के देह-चैतन्य, अर्थात् मनोमय भूतात्मा, वासनालोकीय भूतात्मा, तथा स्थूल भूतात्मा, (Elemental)

पहिले हम देह-चैतन्यके प्रकारोंका विचार करेंगे। स्थूल देहकी एक चेतना होती है जो सीमित होने पर भी अपने जीवन और कार्य-कलापके लिए यथेष्ट होती है। इस चेतनाको यह ज्ञात रहता है कि किस प्रकार देहीके ध्यानको आवश्यकता पड़नेपर आकृष्ट किया जाय। जब शरीर थक जाता है, तो यह चेतना व्यक्तिको विश्राम करनेके लिए प्रेरित करती है। जब भूखा या प्यासा होता है, तो यह चेतना व्यक्तिमें खाने-पीनेकी इच्छा उत्पन्न करती है। जब ये कार्य होते रहते हैं तो

जीवात्मा खाना-पीना नहीं चाहता, यह तो हमारे स्थूल शरीरका भूतात्मा (Elemental) है जो यह सब चाहता है। अपनी रक्षा करने योग्य चतुराई इसे पैतृक संपत्तिके रूपमें मिली है। जब बीमारीका आक्रमण शरीरपर होता है तो शरीरके अगणित रक्षक कृमियोंको उनका सामना करनेको वह एकत्र करलेता है; चोट लगनेपर जीव-कोषोंको संगठित करके घाव भर लेता है। जब शरीर सोया रहता है और देही अपने वासनाशरीरमें दूर चला जाता है, तब यह स्थूलशरीरका देह-चैतन्य चादर खींच कर जाड़ेसे शरीरकी रक्षा करता हैं; आवश्यकता होनेपर शरीर-को करवट बदलता है। किसी ऐसी घटनाके घटनेपर जिससे शरीरको आहत होनेकी आशंका होती है, वह जो कुछ थोड़ा बहुत कर सकता है उसकी रक्षाके लिए अवश्य करता है। यदि गोली दगे या दर्वाज़ा वंद कर दिया जाय, तो यह कूदकर पीछे हट जाता है। उसकी चेतनाको इतना विवेक नहीं है, कि गोली दगनेसे जो खतरा है और दर्वाजा बन्द होनेमें जो आशंका है, उनका अन्तर जान सके।

शरीरके भूतात्मा (Body elemental)के ये प्रकट रूप यथेष्ट स्वाभाविक हैं और इनसे देहीकी चेतनाको छेड़-छाड़ करनेकी आवश्यकता नहीं होती; मगर कभी-कभी हस्तक्षेप आवश्यक होजाता है, जब कोई कर्त्तव्य करना आवश्यक है और शरीर थका होनेके कारण कुछ करना नहीं चाहता, या

जब किसी भयसे पूर्ण कार्यमें हाथ डालना है, पर शरीरका भूतात्मा भयभीत होकर भागना चाहता है, किन्तु देहीको अपनी दृढ़संकल्प शक्ति द्वारा उसे इस भयावह कार्यमें लगाना ही है। बच्चोंमें यह स्थूलशरीरका भूतात्मा स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है; जब बच्चा रोता है और चीख मारता है, तो यह सब शरीरके भूतात्माका अपनी असम्मति प्रकट करनेका ढंगमात्र है, जो उसे सर्वथा उचित और युक्तिसंगत जान पड़ता है, हमें वह चाहे कितना ही असंगत और अनुचित क्यों न जान पड़े। बच्चेका जीवात्मा यह चीखपुकार नहीं मचाता।

इस स्थूलशरीरके भूतात्माके जीवन और चेतनामें उन समस्त सुख-दुःखोंके अनुभवका भंडार है जो उसके स्थूल शरीरके पूर्व पुरुषोंको हो चुके हैं; इसका जीवन सुदूर भूतमें एक समय किसी जंगली मनुष्यकी वासनाशरीरके भूतात्माका जीवन था। उसकी नाना प्रकारकी पैतृक स्मृतियाँ होती हैं, प्रवृत्तियाँ होती हैं, जिनको वह पुनः धारण कर लेता है, जब कभी जीवात्माकी चेतनाका अधिकार उसके ऊपरसे कुछ ढीला होता है। फ्रॉइड, युंग और एडलरके मनोवैज्ञानिक विश्लेषणमें इसी देहचैतन्यका ज्ञान प्राप्त किया गया है और इस देहचैतन्यके विकृत कार्यकलापका ही दिग्दर्शन कभी-कभी हमारे निरर्थक स्वप्नोंमें होता है।

वासना और मनोमय शरीरोंके भूतात्मा तात्त्विक-सत्त्वके

जीवनसे बने होते हैं। यह तात्त्विकसत्त्व खनिजजीवनसे भी पहिलेके ईश्वरके प्रकट रूपकी अवस्था है; यह 'प्रवृत्ति मार्ग'की अवस्थाका है और प्रकृतिमें उतरनेकी दशामें है, जो आगे चलकर खनिजका रूप धारण करेगा, फिर वनस्पतिका, और फिर पशुजीवनका। उसकी मुख्य आवश्यकता अपनेको जीवित अनुभव करनेकी रहती है और जितने ही प्रकारोंमें यह जीवित रहनेका अनुभव हो सके, उसके लिए उतना ही अच्छा। यह विविध प्रकारके स्पंदन पसंद करता है और जितने ही निम्न कोटिके वे हों और जड़ताकी दिशामें हों, उतना ही अधिक प्रसन्न यह भूतात्मा होता है। यही कारण है कि हमारे शरीरके अंग हमारे मनके विरुद्ध कार्य करते हैं और इसी प्रकार सेण्टपॉलके शब्दोंमें 'पाप हमारे अंदर निवास करता है।'

वासनादेहका भूतात्मा वासनाशरीरका हर प्रकारसे उत्तेजित रहना पसंद करता है; नवीनता, विविधता और उत्तेजना, इन्हे ही वह अपने अधोमुखी जीवनधाराके लिए पसंद करता है। मनोमयदेहका भूतात्मा मनका एकाग्र रहना पसंद नहीं करता; वह सदैव चंचल रहता है और नानाप्रकारके विचार-स्पंदन चाहता है। इसीलिए मनको एकाग्र करना हमें इतना कठिन होता है; मनके चांचल्यका इतना अधिक अनुभव हमें होता है। .. . .

परंतु इन वासना और मनोमय देहोंका स्वामी, जीवात्मा, तो ऊर्ध्वमुखी मार्ग पर है। असंख्य वर्षों पहिले जीवात्मा खनिज, वनस्पति और पशुयोनियोंमें रह चुका है। जो अनुभव आज वासना और मनोमय शरीरके भूतात्माओंको वांछनीय जान पड़ते हैं, वे जीवात्माके लिए अवश्य ही वांछनीय नहीं हैं। वे उसकी उन्नति और कार्यके लिए हानिकर भी हो सकते हैं। इसीलिए बराबर जीवात्माको अपने देहोंके भूतात्माओंसे संघर्ष करते रहना पड़ता है ; इसीको संस्कृतमें "जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः" कहते हैं ; और ईसाई संत पॉलके शब्दोंमें "जो पुण्य मैं करना चाहता हूँ, करता नहीं, और जो पाप मैं नहीं करना चाहता, वही मुझसे हो जाता है।"

जीवन, मृत्यु तथा उसके पश्चात् भी, मानवका कार्य है अपने देहोंको वशमें करना और उनकी शक्तियोंको कर्मके देवताओं द्वारा निश्चित कार्यकी पूर्तिमें लगाना, जिसमें जीवात्मा भी सहमत हो चुका है। मानव इस कार्यमें सफल हो या असफल, यह तो जीवात्माकी संकल्पशक्ति पर निर्भर है और उसके इस ज्ञान पर निर्भर है कि वह संकल्प-शक्तिका उपयोग किस प्रकार करे। चित्र ९३ में यही जीवनका युद्ध-क्षेत्र, दरसाया गया है।

जीवात्मा या व्यक्तित्व मनुष्यका उच्च 'अहं' है ; इसीको प्लेटोने अपने दर्शनशास्त्रमें 'डेमन' कहा है। इसके तीन

गुण हैं, या यों कहिए कि यह तीन अंशोंसे बना है (१) आत्मा (२) बुद्धि और (३) उच्च मन। इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति द्वारा भी इस उच्च 'अहं'की त्रिपुटीका वर्णन हो सकता है। हमारा देहात्मा (पर्सनालिटी) हमारा निम्नात्मा

उच्चात्मा: आत्मा, बुद्धि, मनस		
इच्छा-शक्ति(सुषुप्त)		इच्छाशक्ति(प्रबल)
अज्ञात चेतन	ज्ञात चेतना	परा चेतन
	मानसिक	
पूर्वाग्रह:	विचार	धारणा
	भुवर्लोकीय	
तृष्णाएँ	वासनाएँ	स्नेह सहानुभूति
	भूलोकीय	
पूर्वार्जित प्रवृत्तियां	क्रिया	संयम पवित्रता

चित्र ५३

है और इसके संयोजक अंश हैं निम्नमन, वासना, और स्थूलकार्य, जिनके तीन वाहन हैं, मनोमय, वासनामय, और स्थूल शरीर। इन्हींके द्वारा यह देहात्मा प्रकट होता और कार्य करता है। उच्चात्मा अनुभवोंको शक्तिमें परिणत करनेके लिए

अपना अंशमात्र पृथ्वी पर अवतीर्ण करता है।

सब कुछ इसी पर निर्भर है कि जीवात्माकी इच्छाशक्ति कितनी सामर्थ्यवान है और कहाँ तक वह अपनेको शरीरों पर शासन करनेमें व्यक्त कर रही है। जब जीवात्माकी इच्छा-शक्ति मनोमयशरीर, वासनाशरीर तथा स्थूलशरीरके भूतात्माओंको वशमें रखकर उनकी सहज प्रवृत्तिओंपर प्राधान्य प्राप्त किये रहती है, तो वह जन्म सार्थक और सफल कहा जा सकता है। और जब ये तीनों भूतात्मा प्रबल हो जाते हैं और जीवात्माके वशमें नहीं रहते, तो उस जन्म विशेषका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। अधिकांश लोगोंमें न तो सर्वथा प्राधान्य जीवात्माको ही प्राप्त होता है और न भूतात्माको ही ; किन्हीं मामलोंमें जीवात्मा प्रबल रहता है और कभी-कभी नहीं भी। फल क्या होता है यह चित्र ९३ में दिखाया है।

शरीरके कार्य न पुण्यमय होते हैं न पापमय। शरीरका धर्म है कि क्षुधा शांत करके जीवित रहे, जलपान द्वारा प्यासको संतुष्ट करे। पापका आरंभ तो तब होता है जब मनुष्यकी वासनाएँ इन शारीरिक आवश्यकताओंमें संलग्न हो कर उन्हें अधिक उद्दाम बनाती हैं। खा-पीकर जो सुख एक स्थूलशरीरको मिलता है, उसमें जब वासनाशरीर भी रस लेने लगता है, तब स्थूलशरीर पेटू हो जाता है और उसे उत्तेजक पदार्थोंकी उत्कट इच्छा होने लगती है। पहिले तो वासना

शरीर ही यह निश्चय करता है कि भूख-प्यासको शांत कब किया जाय, पर कुछ दिनों बाद स्थूलशरीरका भूतात्मा ही वासनाशरीरको अपना साधन बना लेता है। एक आदिम जंगली मनुष्यके लिए पेटू होना स्वाभाविक है, परंतु एक सभ्य मनुष्य अपनी शारीरिक आवश्यकताओंसे इस प्रकार मोहित हो जाय, तो वह पूर्वजंगली प्रवृत्तियोंकी ओर लौट रहा है, जो अवनतिका पथ है। एक जापानी कहावतमें इस अवनतिका अच्छा वर्णन किया है। कहावत शराबियोंके संबंधकी है।

पहले मनुष्य शराब पीता है,
फिर शराब ही शराब पीती है,
और फिर शराब मनुष्यको पीने लगती है।

परंतु जहाँ मनुष्यकी इच्छाशक्ति प्रबल और प्राधान्य प्राप्त रहती है, वहाँ जीवात्मा शारीरिक क्रियाओंसे अपनेमें संयम और पावित्र्यके गुणोंका विकास करता है। स्थूल शरीर पर पूर्णशासन रखना जीवात्माके लिए बहुत उपयोगी होता है; इस प्रकार शरीरकी समस्त क्रियाएँ पूर्णतया जीवात्माके वशमें रहती हैं और वह तुरंत उनका नियंत्रण कर सकता है। शुद्ध और संतुलित आहार, पूर्ण स्वास्थ्य, अंगों और मांसपेशियों पर समुचित व्यायाम द्वारा अधिकार—येही शारीरिक क्रियाओंमें आत्मसंयम और पवित्रताकी प्राप्तिके साधन हैं।

उसी तरह वासनाशरीरका धर्म है इच्छा करना। उसके लिए वदबू या शोरगुलको न पसंद करना स्वाभाविक है और अच्छी स्वरलहरी तथा सुन्दर वातावरणसे प्रसन्न होना स्वाभाविक और उचित है। वासनाशरीरकी प्रकृति अनुभूतिका एक अत्यंत सूक्ष्म साधन हमें प्रदान करती है। बुराईका आरंभ तो तब होता है, जब वासनाशरीरका भूतात्मा जीवात्मा पर प्राधान्य प्राप्तकर लेता है और उसे अपने उचित पदसे पदच्युत कर देता है। तब एक स्वाभाविक इच्छा उत्कट वासनाका रूप धारण कर लेती है और वासनाशरीर जीवात्माके वशके बाहर हो जाता है। जब मनुष्य क्रुद्ध हो उठता है, और कुछ समयके लिए आत्माके गुणोंको न व्यक्त करके जंगली पशुके गुण प्रदर्शित करने लगता है, तो वह एक प्रकारसे अपनी पूर्व बर्बर प्रवृत्तिकी ओर लौट रहा है। उसका वासनाशरीर उसे उस ओर खींचे ले जा रहा है और वह उस पर नियंत्रण नहीं कर पाता।

समझनेकी बात यह है कि हम लोग इस वासनाशरीरके भूतात्माकी आदतोंसे एक रूप नहीं हैं; अपितु हमें तो उनमेंसे केवल उन वृत्तियोंको खोज निकालना है जो हमारे लिए उपयोगी हैं। कष्टसहनके द्वारा कभी-कभी हम अपने भीतरके इस द्वैतको पहचानने लगते हैं। तेरह वर्षकी अवस्थाकी एक अमरीकी लड़कीने, जिसे मैं जानता हूँ, इसी प्रकार इस बातको

जाना। वह एक दिन स्कूलसे रोती हुई लौटी। उसके संगी-साथी उसे चिढ़ाते थे। माँने पूँछा, क्या उन्होंने तुझे मारा ? लड़कीने कहा 'नहीं, पर मेरी भावनाओंको उन्होंने बहुत बिगाड़ दिया'। जब हमें यह ज्ञान हो जायगा कि हम वासनाशरीरकी भावनाएँ नहीं हैं, बल्कि हम उनके स्वामी हैं, ठीक जैसे हम छड़ीके, या गाड़ीके स्वामी हैं, तो फिर हम स्वयं निश्चय करने लगेंगे कि कहाँतक हम उन भावनाओंको छूट दे सकते हैं।

ठीक इसके विपरीत, हमारे सूक्ष्मशरीरकी भावनाएँ, यदि उनका उचित संयम किया जाय तो, अत्यन्त सूक्ष्म और ग्रहणशील बनायी जासकती हैं और उनके द्वारा जीवात्माके स्नेह और सहानुभूतिका बड़ा सुन्दर प्रकटीकरण हो सकता है। तब हमारा वासनाशरीर एक अत्यन्त मधुर वीणाके समान हो सकता है जिसे बजाकर हम अत्यन्त प्रेरणाप्रद और परिष्कारक भावनाओंकी लहरें इधर-उधर प्रसारित कर सकते हैं।

ऊपर जो कुछ वासनाशरीरके भूतात्माके संबंधमें कहा गया है, वह सब मनोमयशरीरके भूतात्माके संबंधमें और भी अधिक लागू है। मनोमय शरीरका यह स्वाभाविक धर्म है कि वह विचारों द्वारा स्पंदित हो, और जीवात्मा विचारों और चिंतनके द्वारा उस जगत्का ज्ञान प्राप्त करता है, जिसमें वह जीवनयापन करता है। रूप-विचार विश्वकी नापतोल करता है और अरूप-विचारका काम है मनोमय और उससे निचले शरीरोंके

अनुभवोंको शाश्वत धारणाओंमें परिवर्तित करके उन्हें जीवात्माकी प्रकृतिसे एकात्म कर देना। परन्तु हमारे बहुतही थोड़े विचार इस कोटिके होते हैं। इसके दो कारण हैं; (१) हमारे मनोमय शरीरका भूतात्मा हमारे पुराने विचारोंसे चिपटा रहता है और हमारे विपरीत प्रयत्न करने पर भी उन्हीं पुराने विचारों-का चिंतन किया चाहता है और (२) हम स्वयं अपने सृजित विचारोंका चिंतन बहुत कम करते हैं; हमारे अधिकांश विचार दूसरोंके दिये हुए होते हैं। पहिले प्रकारके विचार हमारे पक्ष-पात और हठके विचार होते हैं, हमारी वे धारणाएँ होती हैं जो हम बिना यथेष्ट चिंतनके बना लेते हैं; किसी समय ये विचार बिना अक्षरशः सत्य हुए हमारे लिए उपयोगी भी रहे हों परन्तु अब वे सर्वथा निरर्थक हैं और उनका परित्याग ही हमारे लिए हितकर है, किन्तु हमारा मनोमय भूतात्मा उनसे चिपटा रहता है और पूर्व चिंतन द्वारा जो शक्ति हमने उन्हें दी थी उससे लाभ उठाकर हमें यह दर्शाना चाहता है कि आज भी येही हमारे अपने विचार हैं। अपनी कुलीनता, अपने धर्म-की विशेषता, जाति, वर्ग, पुरुष होनेका अभिमान, रङ्गभेद, आदिका हठ और पक्षपात इसी प्रकारके विचार हैं।

दूसरे प्रकारमें औरोंके दिये हुए विचार होते हैं। हमारे चारों ओरके मनोलोकका वायुमंडल औरोंके विचारोंसे परिपूर्ण रहता है और ये विचार निरन्तर हमारे मनोमयशरीर पर

आघात किया करते हैं और हमसे उनका प्रत्युत्तर चाहते रहते हैं। जब ऐसे विचार हमारे मनमें प्रवेश करने लगते हैं तो हमें सचेत होकर केवल उन्ही विचारोंको अपने मनमें प्रविष्ट होने देना चाहिए जो हमारे जीवात्माके कार्यके अनुकूल हों, और अन्य प्रकारके विचारोंको सर्वथा दूर रखना चाहिए।

ये दोनों प्रकारके विचार कभी-कभी हमारे लिए स्थूल शरीरकी बतौरी (ट्यूमर) के समान कार्य करते हैं। मनोमय शरीरमें कोई-कोई विचार एक स्थायी केन्द्र बनालेते हैं और उसके चारोंओर उसी प्रकारके विचार एकत्र करके उनसे शक्ति संचय करते हैं और फिर एक अंधे फोड़ेके समान हो जाते हैं। जैसे बतौरी या गुमड़ेमें आरम्भमें तो थोड़ीसी पीड़ा मात्र होती है, परन्तु बड़े होकर वे शरीरके कार्यक्रमको ही विकृत करने लगते हैं; वैसेही ये विचार-गुल्म आरम्भमें तो कुछ साधारण अनमनापन और चिंताही उत्पन्न करते जान पड़ते हैं, किंतु आगे चलकर वे मानसिक रोगोंके कारण बन जाते हैं और उनसे पागलपन तक उत्पन्न हो जाता है।

सम्यक कर्म, सम्यक भावना और सम्यक विचार द्वारा प्राप्त अनुभवोंका शाश्वत धारणा (कॉन्सेप्ट) में परिवर्तन भूलोकके जीवनमें तथा मृत्युके उपरांत भुवर्लोकके जीवनमें, केवल अंशतःही हो पाता है। यह परिवर्तन-कार्य स्वर्गलोकीय जीवनमें जारी रहता है। वहाँ इस कार्यके लिए उपयुक्त वातावरण

मिलता है; मनोवांछित आनन्दको सृजन करनेकी वहाँ जीवात्मा को शक्ति रहती है और ईश्वर (शब्द ब्रह्म) के मनका प्रभाव जीवात्माके मनोमयशरीर पर पड़ता रहता है, जिससे वह विस्तृत और विकसित होता रहता है; और इस प्रकार अपने स्वर्गीयजीवनकी अवधि पूरी करता है। वहाँ अपनी इच्छा शक्तिको वह विकसित और दृढ़ करता है, अपने अनुभवोंको शाश्वत धारणाओं और शक्तियों और सामर्थ्यमें परिवर्तित करता रहता है और यह सामर्थ्य उसके गुप्त दैवी स्वभावको अधिकाधिक प्रतिबिम्बित करती जाती है।

दो जन्मोंके बीचका अंतर

जीवात्मा की कोटि	अधोगत	जंगली	मजदूर	किसान	व्यापारी	वैद्य डॉक्टर	आदर्शवादी	शिष्य
संपूर्ण समय (वर्षोंमें)	५	४०	२००	३००	५००	१०००	१२००	२३००
उच्च स्वर्ग	—	—	—	—	—	थोड़ा समय	५०	१५०
निम्न स्वर्ग	—	—	१६०	२६०	४७५	९७५	११४५	२१५०
भुवर्लोक	५	४०	४०	४०	२५	२५	५	—

चित्र ९४

यह कार्य जिसे मनुष्य अपने स्वर्गलोकीय जीवनकालमें करता है स्वभावतः उसकी आकांक्षाओंकी शक्ति और उसके

परिवर्तन करनेकी सामर्थ्य पर निर्भर होता है। यही निश्चित करते हैं कि वह कितने समय तक 'देवचन' में निवास करेगा, जहाँ वह आनन्दके द्वारा उत्कर्षको प्राप्त होगा। चित्र ५४ में भिन्न-भिन्न जीवात्माओंके परलोकीय जीवनकी तालिका दी गई है। जब स्थूलशरीरकी मृत्यु हो जाती है, तो मनुष्य कुछ समय भुवर्लोकमें रहता है; तत्पश्चात् वह निम्न स्वर्ग 'देवचन' में रहने चला जाता है। देवचनकी समाप्तिपर मनोमयशरीर भी, जो देहात्माका अंतिम शेषांश है, छूट जाता है और जीवात्मा फिर अपने निज स्वरूपमें अपनी शक्तियोंसहित उच्च स्वर्गमें प्रविष्ट होता है। कुछ कम या अधिक समय बीतने पर, पूर्ण सचेत रीतिसे या योंही धुँधली सी चेतना रखते हुए, जीवात्मा एक बार फिर एक नवीन देहात्मा धारण करनेके लिए अंशतः अवतीर्ण होता है।

हम तालिकामें देखेंगे कि अधोगति प्राप्त निकृष्ट कोटिका जीवात्मा केवल पाँचवर्षके लगभग भुवर्लोकमें व्यतीत करता है और देवचनमें रहने योग्य गुणोंके न होनेके कारण, फिर तत्काल नया जन्म धारण कर लेता है। मज़दूर, किसान व्यापारी आदि शब्द, पेशेविशेषके अर्थमें न होकर, शिष्टताकी कोटिके प्रदर्शकके अर्थमें व्यवहार किये गये हैं। इसी प्रकार 'वैद्य डॉक्टर' से तात्पर्य सभी शिक्षित पुरुषोंसे है। एक

किसान या व्यापारी भी अत्यंत सुसंकृत व्यक्ति हो सकता है और साधारण किसान या व्यापारीकी कोटिका न होकर ऊँची कोटिका जीवात्मा हो सकता है।

ऐसा सुसंस्कृत व्यक्ति जो स्पष्टतया आदर्शवादी है और अपने आदर्शोंके लिए त्याग करता है, स्वर्गलोगके उच्च विभागमें सचेतन और सक्रिय जीवन व्यतीत करता है। जिस व्यक्तिने किसी सिद्ध-महात्माकी देख-रेखमें अपने जीवनको सेवाके लिए उत्सर्ग कर दिया है, यदि 'देवचन' लेना चाहे तो अपने मृत्युके पहिले अपने जीवनको पूर्ण रूपसे परिष्कृत करलेनेके कारण उसे भुवर्लोकमें बिलकुल न रहना होगा, और वह तुरन्त देवचनमें प्रविष्ट हो जायगा।

तालिकासे हमें यह भी ज्ञात होगा कि दो जन्मोंके बीचका अंतर पाँच वर्षसे लेकर तेइससौ वर्ष तक हो सकता है। जब बच्चे मरते हैं तो उनका भुवर्लोकीय जीवन बहुत थोड़े समयका होता है; और उसी प्रकार बहुत थोड़े समयका स्वर्गीय जीवनभोग कर वे शीघ्रही फिर जन्म ग्रहण कर लेते हैं; कुछ महीनोंसे कुछ वर्षों तकका अन्तर एक बच्चेके मर कर दूसरा जन्म लेनेके बीच हो सकता है। यह समय भी बच्चेकी आयु तथा मानसिक और वासनासंबधी स्वभाव पर निर्भर है।

अगले चित्र ५९ में मानवके गुप्त स्वभाव और गुणोंके संबंधमें बहुतसी बातें जो पहिले भी कही जा चुकी हैं दिखाई

गई हैं। पहिले ख़ानेमें सूर्यमंडलके सातों लोकोंके नाम हैं; दूसरे ख़ानेमें मनुष्यके चार शरीरों या देहोंकी चर्चा है। तीसरे और चौथे ख़ानेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि मनुष्य अपने उच्चतम स्वरूपमें विशुद्धात्मा (मोनैड) के रूपमें

मनुष्य की रचना				
आदि लोक				विशुद्धात्मा
अनुपादक लोक			विशुद्धात्मा शिव में स्थित विष्णु	का सूत्र
आत्मिक या निर्वाण लोक		आत्मा		
बुद्धि लोक		अंतः प्रज्ञा	पुनर्जन्म लेने वाला जीवात्मा	जीवात्मा का सूत्र
उच्च स्वर्ग	कारण शरीर	कल्पना		
निम्न स्वर्ग	मनोमय शरीर	मूर्त विचार		
भुवर्लोक	वासना शरीर	व्यक्तिगत भावनायें आवेश	देहात्मा	मानव का सूत्र
भूलोक	प्राण तथा स्थूल शरीर	शारीरिक कार्य		

चित्र ५९

स्वर्लोकसे ऊपरके चारों लोकमें निवास करता है, किंतु अभी तक उन लोकोंमें कार्य करने योग्य कोई वाहन या देह उसने प्राप्त नहीं किया है।

हमारे साधारण अध्ययनके लिए मनुष्यका आत्मा कारण शरीरधारी जीवात्मा (व्यक्तित्व) है। यह जीवात्मा अपने जन्म विशेषके कार्यके लिए एक देहात्मा का सृजन करता है। इस देहात्माके तीन शरीर मनोमयशरीर, वासनाशरीर तथा स्थूल शरीर होते हैं। प्रत्येक निचला शरीर, जीवात्माके एक पहलूका प्रतिनिधित्व करता है, और कारण शरीरधारी जीवात्मा ही प्रत्येक जन्मके मौलिक स्वरका निश्चय करता है; इसलिए हम कह सकते हैं कि जीवात्मा और उसके तीन निचले शरीर मिलकर मानव-सूत्र बनाते हैं। परंतु कारणशरीरधारी जीवात्मा आत्माके संपूर्ण गुणोंको प्रकट नहीं करता, अंशतः ही करता है; उससे ऊँचा बुद्धितत्त्व या अंतःप्रज्ञा है और भी ऊँचा आत्मा है, जो ही मनुष्यमें ईश्वरका अंश है; और ये आत्मा, बुद्धि, मानस तीनों विशुद्धात्माके और भी उच्चतर गुणोंके प्रतिबिंब हैं। ईश्वर (शब्द ब्रह्म) के जीवनका मौलिक स्वरही विशुद्धात्माको उसकी प्रधान ध्वनि प्रदान करता है और आदि, अनुपादक, और निर्वाणिक लोकोंमें विशुद्धात्माके गुण उसके 'आत्म सूत्र' कहे जाते हैं। यह विशुद्धात्मा अपने लिए अपनेही अंशसे जीवात्माका सृजन करता है, और उसीके स्वरकी प्रधानता

रहती है। यह स्वर, और आत्मा, बुद्धि और मनसके स्वर मिलकर 'जीवात्माके सूत्र' कहे जाते हैं, जब फिर जीवात्मा अपने लिए नये देहात्माका निर्माण करता है तब यही 'मनुष्यका सूत्र' कहलाता है।

× × × ×

मानवका कार्य मृत्यु और जीवनमें, यही जान लेना है कि वह स्वयं क्या है, जगत् क्या है, और क्या है वह सर्वव्यापी ईश्वर (शब्द ब्रह्म) जिसमें हमारा निवास और अस्तित्व है। अनुभव और कर्मके कई युग लग जाते हैं तब कही वह ब्रह्म ज्ञानके इस रहस्यको कुछ थोड़ाबहुत हृदयंगम कर पाता है और ईश्वरकी योजनाको, जो विकासक्रम है, थोड़ाबहुत समझने लगता है। फिर भी यही उसका शाश्वत कार्य है, अपनेमें और औरोंमें भी, मृत्तिकाको, पशुको, और ईश्वरको पहिचानना। यह समस्त जीवन एक कारखाना है जहाँ उसे अपना कार्य सिखाया जाता है और अनेक शिक्षक उसकी सहायताके लिए आते हैं। विविध धर्ममत और दर्शन, नाना प्रकारके विज्ञान और उसके समयके कलाकौशल, येही वे शिक्षक हैं। परन्तु सबसे अधिक वांछनीय शिक्षक यह गुप्तविद्या, थिऑसोफी, हो सकती है, जिसमें ईश्वरीय योजनाका इतना हृदयग्राही और स्फूर्तिदायक वर्णन है। ऐसा सुन्दर और आकर्षक वर्णन और किसी धर्ममत या शास्त्रमें प्राप्त नहीं है।

सातवाँ अध्याय

पशुओंका विकास

जब हम प्रकृतिका निरीक्षण करते हैं तो हमें सहजही यह स्पष्ट होजाता है कि संसारमें प्राणियोंकी संख्या मानवजगत्में उतनी नहीं है जितनी पशु और वनस्पति जगत्में। आधुनिक विज्ञानकी धारणाके अनुसार वनस्पतिजगत्से पशुजगत्के और पशुजगत्से मानवके विकास होनेमें कुछ 'पुल' सरीखे संयोजक रूप होते हैं; इससे यह स्पष्ट है कि विकास-क्रमका उच्चतम प्राणी मानव होनेके कारण, मानवही समस्त पूर्व आकारों और रूपोंका लक्ष्य रहा है। मानव होनेहीकी ओर वे सब अग्रसर होरहे हैं। पशुजगत्का उच्चतम् रूप जो मानवके अधिकसे अधिक समान होता है, वह है वह 'लुप्त रूप' जिसे आधुनिक जीव-विज्ञानमें लुप्त कड़ी ('मिसिंग लिंक,) कहते हैं। यह 'मिसिंग लिंक' बहुत कुछ मनुष्यके समान आकारवाले वनमानुससे मिलता जुलता कल्पित किया जाता है। रूपकी दृष्टिसे इस मनुष्यके समान दिखनेवाले वनमानुससे मानवमें

परिवर्तन हम ठीक-ठीक समझ सकते हैं ; किन्तु जब हम पशु जगत्की बुद्धि पर विचार करते हैं तो हमें विकासकी वैज्ञानिक कल्पनामें बहुत बड़ी कमी दिखाई देती है । कुछ पालतू जानवरोंमें यथा कुत्ते, बिल्ली और घोड़ेमें, हम बहुतसे मानवोचित बुद्धि और भावनाके चिह्न पाते हैं ! कोई-कोई पालतू कुत्ते तो आंतरिक स्वभाव और चेतनाकी दृष्टिसे बनमानुससे कहीं अधिक मनुष्यके समान होते हैं । यह तो स्पष्ट है कि रूप या शरीरकी दृष्टिसे कुत्तेसे एकदम मनुष्यका विकास सम्भव नहीं है । इसलिए अनिवार्य रीतिसे यह मानना पड़ेगा कि यदि विकासका क्रम ठीक-ठीक विज्ञान द्वारा प्रतिपादित श्रेणीके अनुकूलही होता है, तो, फिर पालतू पशुओंमें विकसित मानवोचित गुण एक प्रकारसे व्यर्थही जाते हैं । (देखिये चित्र ९)

प्रकृतिके कार्य-कलापको पूरी तौरसे समझनेके लिए, हमें रूपोंके विकासकी कल्पनाकी पूर्ति जीवनके विकासकी कल्पनासे करनी होगी । इस जीवनके विकासकी कल्पनाकेही द्वारा हम विकास-क्रममें पशुजगत्का क्या कार्य और महत्व है, यह समझनेमें समर्थ होंगे ।

समस्त जीवन चाहे वह खनिज रूपमें, वनस्पति रूपमें, पशुरूपमें या मनुष्यरूपमें हो, वस्तुतः एक व्यापक जीवनही है और वह ईश्वरके स्वभाव और कार्यका प्रकट रूप है ; परन्तु यह जीवन अपने गुणोंको कम या अधिक, उतना ही प्रकटकर

सकता है, जितनी कम या अधिक विजय अपनी बाधाओं और अड़चनों पर यह जीवन प्राप्त करलेता है। उसके ऊपर सबसे अधिक बंधन खनिजजगत्‌में रहता है; परन्तु ये बंधन वनस्पतिजगत्‌में कुछ कम होजाते हैं; पशु जगत्‌में और कम तथा मानव जगत्‌में आकर ये बंधन और भी अधिक कम रह जाते हैं। अपने गुणोंके विकासमें जीवन इन बंधनोंको एकके बाद एक, धारण करता है। खनिज जगत्‌के बंधनमें पड़कर और उस अवस्थामें, रवोंके ज्यामितिके आकारों द्वारा अपनेको व्यक्त करनेका अभ्यास करके, जीवन वनस्पतिजगत्‌में प्रविष्ट होनेको अग्रसर होता है। जो कुछ सामर्थ्य और कुशलता खनिजजगत्‌में प्राप्त की है, उसकी रक्षा करते हुए अब वही जीवन वृक्षरूपमें नये गुणोंका विकास करता है और आत्म-प्रकाशनके नये ढंग सीखता है। जब वनस्पतिजगत्‌का पर्याप्त विकासकार्य होचुकता है, तब यह जीवन अपने खनिज और वनस्पति जगत्‌में प्राप्त अनुभवोंको लिये हुए पशु जगत्‌के जीवित आकार बनाता है और उनके द्वारा अपने गुप्त गुणोंको पशुजगत्‌के अधिक दुरूह किन्तु साथही अधिक लचीले शरीरों द्वारा प्रकट करता है। जब पशुजगत्‌में भी उसका विकासकार्य पूरा हो चुकता है, तब उसके आत्म-प्रकाशनकी अग्रिम श्रेणी मानवजगत्‌की आती है।

इन समस्त श्रेणियोंमें, खनिज, वनस्पति, पशु और मनुष्यके रूपमें, वही एक व्यापक जीवन कार्यरत रहता है; रूपोंको

बनाते और बिगाड़ते और फिर बनाते हुए निरंतर अधिक सफल और उच्च प्रकारके रूप वह बनाता रहता है। यही जीवन, खनिजजगत्में कार्य आरंभ करनेके पहिले, सात धाराओंमें अपनेको विभक्त करलेता है; इस प्रकारकी प्रत्येक

जीवनके प्रकार
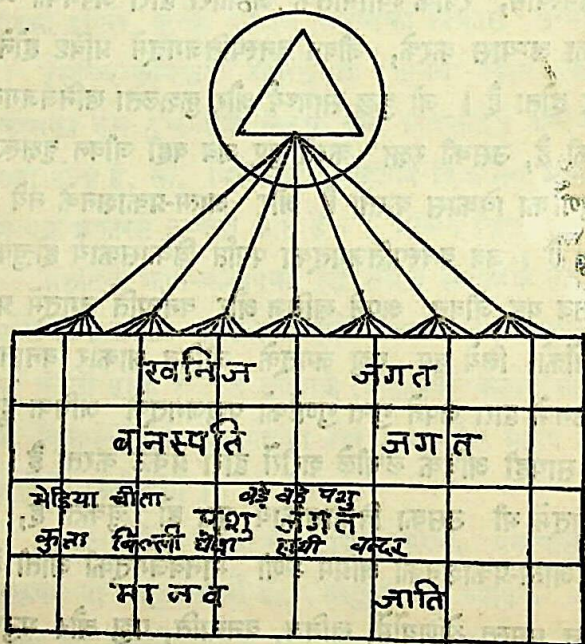
चित्र ९६

धाराके अपने विशेष गुण होते हैं, जो बदलते नहीं (देखो चित्र ५६) जीवनका एक मात्र स्रोत यहाँ त्रिकोणके रूपमें दरसाया गया है। इन सात धाराओंमेंसे प्रत्येकके सात प्रकार होते हैं। यदि हम इन सात मुख्य धाराओंको १, २, ३, ४, ५, ६, ७, अंकोंसे व्यक्त करें तो उनके परिवर्तित सात प्रकार (चित्र ५६ (अ)) आगे दिये हुए नकशेके अनुसार होंगे।

$१_{१}$	$२_{१}$	$३_{१}$	$४_{१}$	$५_{१}$	$६_{१}$	$७_{१}$
$१_{२}$	$२_{२}$	$३_{२}$	$४_{२}$	$५_{२}$	$६_{२}$	$७_{२}$
$१_{३}$	$२_{३}$	$३_{३}$	$४_{३}$	$५_{३}$	$६_{३}$	$७_{३}$
$१_{४}$	$२_{४}$	$३_{४}$	$४_{४}$	$५_{४}$	$६_{४}$	$७_{४}$
$१_{५}$	$२_{५}$	$३_{५}$	$४_{५}$	$५_{५}$	$६_{५}$	$७_{५}$
$१_{६}$	$२_{६}$	$३_{६}$	$४_{६}$	$५_{६}$	$६_{६}$	$७_{६}$
$१_{७}$	$२_{७}$	$३_{७}$	$४_{७}$	$५_{७}$	$६_{७}$	$७_{७}$

चित्र ५६ (अ)

अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि पहिले प्रकारके जीवनके सात भिन्न-भिन्न रूपान्तर होते हैं, जिनमेंसे पहिले रूपांतरमें उसका अपना विशेष गुण द्विगुणित होकर प्रकट होता है ($१_{१}$) परंतु दूसरेसे सातवें रूपांतर तक उसका अपना गुण छः अन्य प्रकारोंके गुणोंसे प्रभावित होता है ($१_{२}$ $१_{३}$ $१_{४}$ $१_{५}$ $१_{६}$ $१_{७}$)। यही क्रम अन्य छः मुख्य प्रकारों पर भी लागू होता है, जैसा नक्शेसे स्पष्ट हो जाता है। ये प्रकार थिऑसोफीके साहित्य में 'रेज़' (Rays) या किरण कहलाते हैं।

ये एक ही जीवनके उंचास रूपांतर, खनिजसे लेकर मानवजगत् तक, अपने ही विशेष गुणों और स्वभावके अनुसार विकसित होते हैं। जीवनका जो प्रकार पशुजगत्में ३२ प्रकारांतरका है, वह खनिजजगत्से अपने ही मार्ग द्वारा वनस्पति जगत्में भी ३२ के ही प्रकारके रूपमें रहा है, और जब पशुजगत्में प्रविष्ट होनेका समय आता है तब वह जीवन ३२ के ही प्रकारके रूपमें प्रकट होता है और उन्हीं पशुयोनियोंमें जन्मता है जो इस प्रकारके जीवनके लिए निर्दिष्ट हैं। फिर यही पशुजीवन जब मानवशरीर धारण करने योग्य हो जाता है तव वह इसी प्रकार (३२) का मनुष्य बनता है, किसी दूसरे प्रकारका नहीं। ये उंचासों प्रकारके एक ही जीवनके रूपान्तर खनिजसे वनस्पति, वनस्पतिसे पशु, पशुसे मनुष्यजगत्में अपनेही सुनिश्चित मार्गसे आते हैं और एकका दूसरेसे सम्मिश्रण नहीं होता।

जब ये उंचास जीवनधाराएँ पशुजगत्से मानवजगत्में प्रवेश करनेके योग्य हो जाती हैं, तो प्रत्येक मौलिक प्रकारकी जीवनधाराके सातों प्रकार एक साथ उस प्रकारके उच्चतम पशु जीवनके निर्दिष्ट पशुशरीरमें केंद्रित हो जाते हैं। दैवी विधानमें ऐसी योजना रहती है कि ये पशु पालतू होकर मानव-संपर्कमें आवें; और उनके स्नेह और पोषणके प्रभावसे पशुओंके छिपे गुण प्रकट और विकसित होते हैं और फिर उस पशुका

मानवजगत्में 'व्यक्तीकरण' Individualisation होता है।

आज कुछ ऐसे पशुओंके प्रकार हैं जो पशुजगत्से मानव-जगत्में प्रवेश करनेके लिए द्वार स्वरूप हैं। ये पशु हैं कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, हाथी और कदाचित् बंदर भी। इन द्वारोंमें होकर पशुजीवनसे मानवजीवनमें प्रवेश हो सकता है, यदि मानवकी क्रिया द्वारा इन पशुओं पर उपयुक्त प्रभाव डाला जाय। यद्यपि अपनी किरणों पर कुत्ते और बिल्ली उच्चतम् प्रकारके पशु हैं, फिरभी पशुसे मनुष्य होनेका यह परिवर्तन तभी होगा जब कुत्ते या बिल्लीकी बुद्धि और स्नेहभावना किसी मनुष्यके निजी प्रयत्नसे जागृत और विकसित की जाय। हमारे पालतू जानवर जंगली जानवरोंके विकसित स्वरूप हैं। कुत्ता भेड़ियेकी सन्तान है और बिल्ली शेर चीता आदिकी ही वंशधर है। आज दिन कुत्तेके प्रकारके समस्त प्राणियोंकी जीवनधारा, मानवजगत्में प्रविष्ट होनेके लिए पालतू कुत्तों पर केन्द्रित रहती है; और इसी प्रकार बिल्लीके प्रकारके तमाम प्राणियोंका जीवन पालतू बिल्लीपर केन्द्रित रहता है। आने वाले युगोंमें दूसरे पालतू जानवर होंगे और तब वे भी मानव-जगत्में प्रवेश करनेके लिए 'द्वार' का काम करेंगे। (हमारे देशके पालतू गाय आदि भी कदाचित् इस प्रकारके मानवजगत्के प्रवेशके द्वार हो सकते हैं। अनु०)

पशुओंके विकासको समझनेमें यह आवश्यक है कि यह

हम ठीक-ठीक समझ लें कि समूह-आत्मा (ग्रूप सोल) क्या है। जिस प्रकार थिऑसोफीके दृष्टिकोणसे स्थूल शरीर ही मनुष्य नहीं है, वरन् मनुष्य एक अदृश्य जीवात्मा है जो शरीर धारण किये हुए है, ऐसे ही पशु भी हैं। पशुका शरीर ही पशु नहीं है ; वास्तविक पशु तो अदृश्य जीवन है जो पशुशरीर द्वारा कार्य करता है। यह अदृश्य जीवन जो पशुशरीरोंको अनुप्राणित करता है, समूह-आत्मा कहलाता है।

समूह-आत्मा कुछ निश्चित मात्रामें मनोलोकीय प्रकृति है जो ईश्वरकी शक्तिसे अनुप्राणित है। इस मनोलोकीय प्रकृतिके अन्तर्गत विकासकी पशु श्रेणीका जीवन रहता है, और इस जीवनमें पशु चेतनाके सभी संभाव्य परिवर्तन सुरक्षित रहते हैं। यह पशु समूह-आत्मा पहले वनस्पति समूह-आत्मा था और उससे पहिले खनिज समूह-आत्मा। अब जिस अवस्थाका हम विचार कर रहे हैं उसमें यह पशु समूह-आत्मा पर्याप्त रूपसे वनस्पति और खनिज जगत्के अनुभवों द्वारा कुशलता प्राप्त कर चुका है। विकासकी वर्तमान अवस्थामें पशुजगत्के लिए कोई एक ही पशु-समूह-आत्मा नहीं है, जैसे कि सब पशुओंके लिए कोई एक ही स्थूलशरीरका आकार नहीं है ; और जैसे रूपके विकासमें अनेक वर्ग, समूह, कुटुम्ब आदि होते हैं, वैसेही पशु समूह-आत्माका भी वर्गीकरण हो सकता है।

हमारे अगले चित्र ५७ में, समूह-आत्मा कैसे कार्य करता

है, इसका कुछ दिग्दर्शन कराया जायगा। मानलें कि मनोमय लोकमें किसी विशेष प्रकारके पशुका समूह-आत्मा है। वह बार-बार भूलोकमें अपने पशुप्रतिनिधियों द्वारा अवतरित होगा। जब तक दो पशु संसारमें जीवित हैं उनका जीवन पूर्ण रूपसे पृथक्-पृथक् होगा, किंतु जब वे मरेंगे तो उनमें से प्रत्येकका जीवन लौटकर समूह-आत्मामें मिल जायगा और ऐसे सभी उस समूहात्माके संयोजक पशुओंका जीवन एकमें मिल जायगा। यदि हम चित्रमें देखें और यह मान लें कि क और ख दो प्रतिनिधि पशु भूलोकमें हैं, तो जब उनके बच्चे होंगे,— कके च, छ, ज, झ, और ञ और ख के ट, ठ, तो इस दूसरी पीढ़ीका जीवन सीधे मनोमयलोकके समूह-आत्मासे आयेगा। मान लो कि कके बच्चोंमें च, ज और झ किसी कारण मर जाते हैं और खका भी एक बच्चा मर जाता है। जब ये पशु मरते हैं तो उनका जीवन सीधे समूह-आत्माको वापस लौट जाता है और उनके अनुभव, जो कुछ उन्होंने मरनेसे पहिले प्राप्त किये थे, उस समूह-आत्माके अनुभवोंके भंडारमें जमा हो जाता है। चित्रमें छके बच्चें होते हैं ड, ढ और ण और जके त और थ, और टको द, ध, और न। इस तीसरी पीढ़ीको अनुप्राणित करनेवाला जीवन भी सीधे समूह-आत्मासे आता है, परंतु अब इस जीवनमें उन अनुभवोंकी छाप भी होगी जो

अनुभव पहिली पीढ़ीवालोंने संग्रह करके दिया था, जिस पीढ़ीके पशु इस तीसरे पीढ़ीके जन्म लेनेसे पहिले मर चुके थे। जैसे
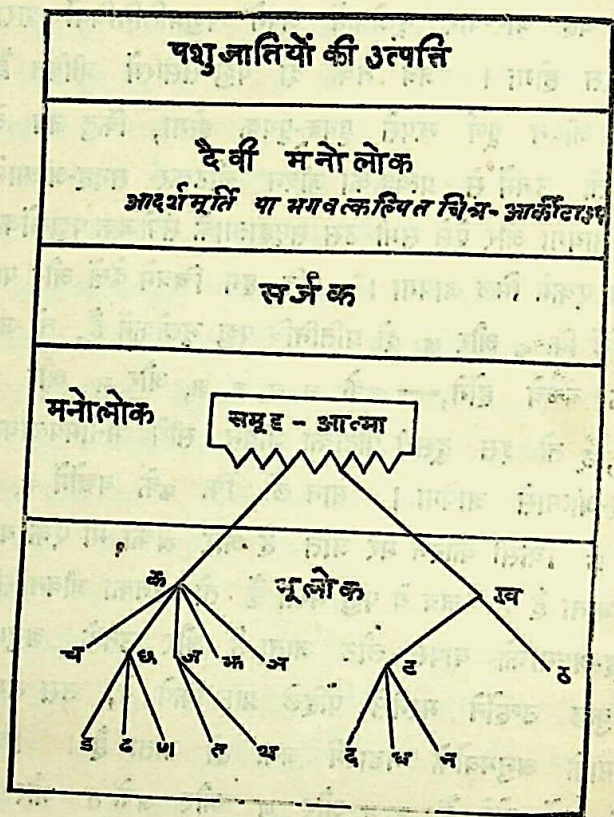
चित्र ५७

जैसे पशु मरते जाते हैं, उनका जीवन लौट कर फिर समूह-आत्मामें मिल जाता है, और यह लौट कर जानेवाला जीवन

अपनी सभी अंतर्भूत स्मृतियाँ और अनुभव, जो उसने अपने स्थूल वातावरणसे प्राप्त किया था, समूह-आत्मामें संचित कर देता है। यही पूर्व अनुभवकी स्मृति पशुओंमें सहज-बुद्धिके रूपमें प्रकट होती है और धीरे-धीरे समूह-आत्माकी चेतना बदलती जाती है; यह परिवर्तन भूलोकसे लौटे हुए पशु प्रतिनिधियोंके जीवनके अनुभवोंके अनुसार होता है।

यह तो स्पष्टही है कि छ, ज और ट इसीलिए जीवित बच सके कि वे अपनेको अपनी बाह्य परिस्थितिके अनुकूल बना सके—यह परिस्थिति बराबर बदलती रहती है; च, झ, ञ और ढ जल्दीही मृत होगये क्योंकि वे अपनेको परिस्थितिके अनुकूल न बना पाये। जो सबल और कुशल थे वे संघर्ष और प्रतिद्वंद्विताके वातावरणमें जीवित बचे। इन्होंने समूह-आत्माके विकासशील जीवनकी नलिका बनकर, उसे अगली पीढीको प्रदान किया और ऐसी संतति उत्पन्न की, जो परिस्थिति विशेषमें जीवित रहनेके योग्य हो।

प्रकृतिके जीवित रहने योग्य रूपोंके चुनावके इस कार्यमें एक बड़ा महत्वपूर्ण कार्य अदृश्य लोकोंके उन निवासियोंका रहता है जिन्हे चित्र ५७ में 'सर्जक' नाम दिया गया है। ये मानवजगत्से उत्कृष्ट कोटिके देवगण होते हैं। इस देव जगत्के एक विभागका कार्य प्रकृतिमें जीवनक्रमका पथप्रदर्शन करना है। वेही इस जीवन-संघर्षका संचालन करते हैं, अपने

पथप्रदर्शनके अन्तर्गत रहनेवालोंमें उन गुणोंके विकासकी अपेक्षा करते रहते हैं, जो गुण वांछनीय आदर्श रूपोंमें होने चाहिये। वेही मेंडेलिअन 'जेनीज़'को एकत्र करते हैं जिनसे रूपोंको अनुप्राणित करनेवाले जीवनमें सुषुप्त गुणोंका प्रकटीकरण होता है। इन सर्जकोंके समक्ष कुछ आदर्श रहते हैं जिन्हे उनकी प्रकृतिमें विकसित करना है, क्योंकि उन्ही रूपोंके द्वारा जीवनके लक्ष्योंकी पूर्ति होगी। इन आदर्श मूर्तियों या प्रकल्पों (आर्किटाइप्स)को सामने रखकरही ये सर्जक-देवता अदृश्य जगत्से जीवित शरीरोंको इस प्रकार गढ़ते रहते हैं कि सबसे सफल रूपका निर्माण होजाय; यह निर्माण विकासकी साधारण वैज्ञानिक विवेचनाके अनुसार पूर्णतया समझमें नही आता।

जीवविज्ञानकी आजकी धारणाओंसे 'विकासकी तीन बड़ी समस्याओं'का पूरा-पूरा हल नहीं होता। ये तीन समस्याएँ हैं, जातियोंकी उत्पत्ति, अनुकूलनकी उत्पत्ति और सुदूर भविष्य तक उनकी वृत्तियोंकी परिपाटीकी रक्षा। 'अन्धी प्रकृति'ही इस प्रकार स-उद्देश्य कार्य केवल यन्त्रवत् रीतिसे, प्रयत्न और भूलसुधारके मार्गसे कर सके, यह बात बुद्धिको संतोषप्रद नहीं जान पड़ती। अनुकूलन (adaptation) तो एक विशिष्ट लक्ष्यको दृष्टिमें रखकर होता है। समूह-आत्माकी कल्पना और सर्जक-देवताओंकी मान्यता एक बुद्धिसंगत योजना प्रस्तुत करते हैं। ये सर्जक ही प्रयोग और भूलसुधारकी क्रिया

उपयोगमें लाते हैं और युगोंतक उनका यह प्रयत्न चलता रहता है, किंतु वांछनीय आकार-प्रकार आरंभसे ही उनकी दृष्टिके सामने रहता है।

जीवित आकारोंकी परीक्षाके लिए ये सर्जक देवगण जीवन संघर्षका उपयोग करते हैं; इस प्रकार वे जान लेते हैं कि उनमें से कौन-कौन प्रकार संघर्ष द्वारा वे अनुकूलन ग्रहण करेंगे जिनसे भगवत्कल्पित चित्रके अनुसार रूपका निर्माण होगा। यह स्मरण रखना चाहिये कि जीवित आकारकी मृत्यु होने पर उसको अनुप्राणित करनेवाला जीवन शून्यमें विलीन नहीं हो जाता; वह जीवन अपने सारे अनुभवोंके साथ समूह-आत्माको लौट जाता है और वहाँसे फिर अन्य आकारों और रूपोंमें प्रकट होता है। इसलिए जब हम यह देखते हैं कि सौ बीजोंमें से एकको ही उगनेकी उपयुक्त भूमि प्राप्त होती है और निन्नानबे बीज व्यर्थ नष्ट हो जाते हैं, तो यह विनाश केवल जानही पड़ता है; वास्तवमें उन निन्नानबे असफल बीजोंका जीवन एक सफल बीजकी संततिके रूपमें फिर प्रकट होता है।

जीवनके अविनाशी होनेका सिद्धांत अपने समक्ष रखे हुए, सर्जक देवता वनस्पति और पशुजगत्‌में जीवन-संघर्षका प्रबन्ध करते हैं। इस क्रमके द्वारा दृश्य-प्रकृतिमें भीषण संघर्ष और नृशंसताका प्रदर्शन होता है; फिर भी इसका एक अदृश्य पहलू भी है, जिसमें प्रतियोगी रूपोंके सर्जक देवताओंमें परस्पर

सहयोगकी भी परिपाटी चलती है। उन सबका एक मात्र लक्ष्य यही है कि भगवत्संकल्पकी पूर्ति हो। उनके समक्ष भगवत्कल्पित आदर्शचित्र रहता है, जिसका रूपोंके विकासमें ठीक-ठीक अनुकरण होना चाहिए।
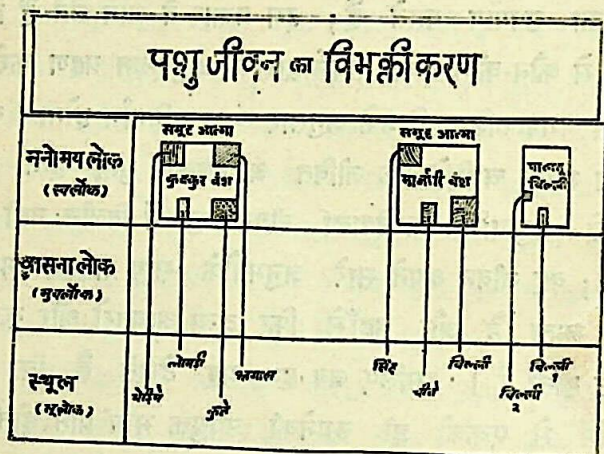
चित्र ५८

अब हमें यह समझना है कि पशुजीवन व्यक्तीकरणकी ओर अग्रसर होते हुए अपनेको जीवन-समूहसे विलग या पृथक किस प्रकार करता है। यदि हम किसी समूह-आत्मापर विचार करें, मान लीजिये हम कुकुर समूह-आत्माको लें, तो ध्यान देनेकी पहली बात यह है कि यह समूह-आत्मा मनोमय लोकमें रहता है। मानलो कि संसारके विभिन्न भागोंमें यह समूह-आत्मा अपना प्रकटीकरण कुत्तों द्वारा करता है।

परिस्थितिकी विभिन्नता तथा विभिन्न जल-वायु आदिके कारण, भिन्न-भिन्न कुत्तोंकी भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्रतिक्रिया होगी और वह उस स्थान विशेषके अनुसार होगी; किसी देश विशेषका प्रत्येक कुत्ता मरने पर अपनेसाथ एक विशेष प्रकारकी प्रवृत्ति और कुछ विशेष अनुभव लेकर समूह-आत्माके पास लौटेगा। जैसे-जैसे समय बीतता जायगा, ये अनुभव एकत्रित होते जायँगे और समूह-आत्मामें अनेक भिन्न-भिन्न केन्द्र बनते जायँगे, जिनके चारोंओर विशेष प्रकारके अनुभव और प्रवृत्तियाँ एकत्रित होंगी। यदि हम अनुभवको एक विशेष गतिका स्पंदन मानलें, तो जब एक ही पदार्थमें दो प्रकारके स्पंदन होने लगेंगे, तो वह पदार्थ दो समूहोंमें विभक्त हो जायगा, जैसे शीशे पर खौलता हुआ जल डालनेसे शीशा भिन्न-भिन्न स्पंदनोंके कारण चिटक जाता है, उसके भीतरकी ओरके कणकी स्पंदनगति बाहरी कणोंकी स्पंदनगतिसे भिन्न होती है। उसी प्रकार कई पीढ़ियोंके बाद हम देखेंगे कि यह कुकुर-समूहात्मा कई वर्गोंमें विभक्त हो जाता है—भेड़िये, लोमड़ी, कुत्ते, शृगाल आदि। उसी तरह भिन्न-भिन्न अनुभवोंके एकत्रीकरणसे मार्जार-समूहात्माका विभाजन शेर, चीते, बिल्ली आदि वर्गोंमें हो जायगा। जैसे एक पशुकोटि परिवारोंमें विभक्त होती है, वैसेही एक समूहात्मा छोटे-छोटे समूहात्माओंमें बँट जाताहै, जिनमेंसे प्रत्येकमें कुछ विशेष गुण, अनुभव और प्रवृत्तियाँ

एकत्रित रहती हैं।

समूहात्माके इस विभक्तीकरणके क्रममें एक ऐसा समय आयेगा जब कि एक अत्यंत विशेषगुणयुक्त समूहात्मा बहुत थोड़ेसे रूपोंको अनुप्राणित करता होगा। जब ऐसा होता है और जब ये रूप (पशु) किसी मनुष्यके संपर्क और प्रभावमें लाये जा सकते हैं, तो पशुसे मानवमें परिवर्तन होना संभव होता है और व्यक्तीकरण अत्यंत समीप आ जाता है।

मानलो कि मार्जार-समूहात्मा मेंसे बँटते बँटते, एक छोटा समूहात्मा केवल थोड़ी संख्यामें पालतू बिल्लियोंको अनुप्राणित करता है; तो इस अवस्थामें व्यक्तीकरण संभव है। दो बिल्लियाँ नं० १ और नं० २ (देखो चित्र ९८) दो भिन्न भिन्न घरोंमें पली हैं। बिल्ली नं० १ तो ऐसे घरमें है, जहाँ उसकी बड़ी देख-रेख की जाती है और उस पर बहुत प्रेमकी वर्षा होती है; और बिल्ली नं० २ ऐसे परिवारमें है, जहाँ वह रसोईको छोड़ कर बैठकमें जाने भी नहीं पाती। न कोई उसे दुलराता-खेलाता है और न प्यार करता है। बिल्ली नं० १ अपने पालनेवालेके विचारों और भावोंके द्रुतगतिवाले स्पंदनोंसे संचालित होकर शीघ्र ही एक जीवात्मा विशेषका रूप धारण करने लगेगी और मरनेसे पहिले ही समूहात्मामें से वह अंश, जिसे बिल्ली नं० १ का जीवात्मा कह सकते हैं, पृथक हो जायगा। किंतु बिल्ली नं० २ जब मरेगी तो उसके समस्त अनुभव आदि फिर समूहात्मामें

मिल जायँगे और उसका व्यक्तीकरण अभी सुदूर ही रहेगा ।

जब बिल्ली नं० १ ने अपने जीवनकालमें ही अपनेको समूहात्मासे पृथक कर लिया है, तो उसकी आगेकी प्रगति चित्र ९९ को देखनेसे समझी जा सकती है । इस वार हम एक
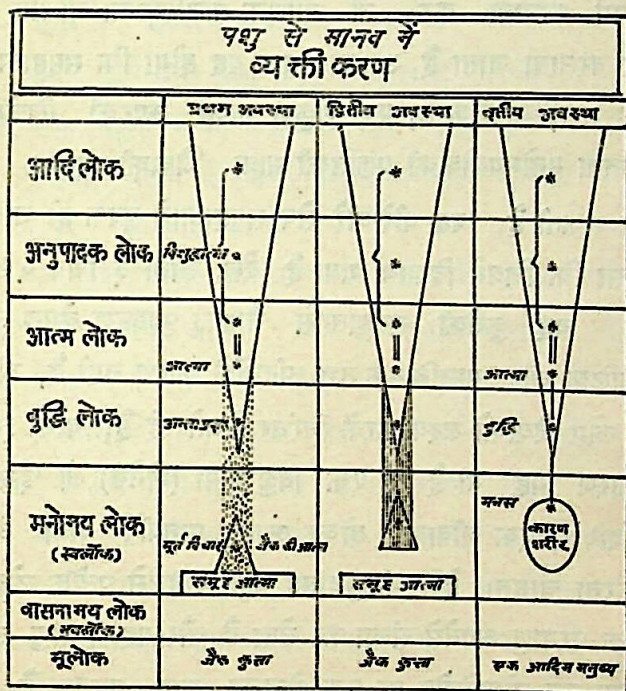
चित्र ९९

बिल्लीका विचार न करके एक कुत्ते 'जैक' पर विचार करेंगे । जैक एक अच्छे जातिका 'फॉक्स-टेरियर' (कुत्तोंका एक प्रकार)

था ; वह बड़ा स्वामिभक्त था, अपने मालिक-मालकिनको बहुत प्यार करता था और इस ग्रंथके लेखकसे उसकी बड़ी मैत्री थी। अब यदि हम चित्र ८९ को देखें और समूहात्मा (जिसमें अपने मालिकके पास आनेसे पहिले जैक था) की एक चतुष्कोणके रूपमें कल्पना करें, तो मालिक मालकिनका जो प्रेम जैक पर बरसाया जाता है, उसका प्रभाव यह होगा कि समूहात्माका वह अंश, जो जैक है, एक शंकुके रूपमें ऊपरको खिंचेगा। जितनी मनोमयलोककी प्रकृतिकी मात्रा 'जैककी आत्मा' कही जा सकती है, वह धीरे-धीरे शेष समूहात्मासे पृथक हो जायगी, जैसा कि चित्रमें दिखाया गया है (देखो खाना ३ चित्र ८९)

यह कुत्तेकी समूहात्मासे जैकका पृथक्करण केवल उसके मालिक और मालकिनके उच्च स्पंदनोंके कारण नहीं है, जो कि वे लोग जैकको लक्ष्य करके निरंतर भेजते रहे हैं, वरन् इसका कारण यह भी है कि एक विशुद्धात्मा (मोनैड) जो 'ईश्वरका अंश' है, एक जीवात्मा होकर अपनी मानवीय यात्रा आरंभ करना चाहता है। विशुद्धात्मा बहुत पहिलेसे प्रत्येक लोकका एक परमाणु अपनेसे संलग्न कर लेता है और यह परमाणु उसके लिए उस लोकविशेष पर एक केन्द्रका काम करता है तथा उसके भावी कार्यक्रमका बयाना सरीखा होता है। विशुद्धात्माके ये अमर-परमाणु क्रमशः भूतसत्व, खनिज, वनस्पति और पशु समूहात्माओंका यथा संभव अनुभव पहिले ही प्राप्त कर चुके

होते हैं। अब जब 'ये अमर परमाणु' पशु-समूहात्माके एक विशेषताप्राप्त अंशके—जैसा कि 'जैकका आत्मा' था—संपर्कमें आते हैं और तब विशुद्धात्मा अपने उच्च लोकसे कुछ प्रभाव भेजता है; ये प्रभाव मानव-शरीरधारी मित्रोंके प्रयत्नके प्रत्युत्तर स्वरूप होते हैं। हमारे चित्रमें इन प्रभावोंको 'जैकके आत्मा' पर पड़ती हुई धारा द्वारा दरसाया गया है। चित्रमें ऊपरका उलटा शंकु विशुद्धात्माका प्रतीक है और उसमेंका प्रत्येक तारा उन गुणोंका प्रतीक है जिन्हें विशुद्धात्मा अपने कार्यकी प्रत्येक भूमिका पर प्रकट कर रहा है।

जब विशुद्धात्मासे प्राप्त प्रबल दैवी प्रभावके परिणाम-स्वरूप समूहात्मासे 'जैकका आत्मा' पृथक् होजाता है, तो भी बाह्य-रूपसे जैक एक कुत्ताही रहता है, परन्तु वास्तवमें वह एक मध्यावस्थामें है; कुत्ता वह अब सर्वथा है नहीं, और मनुष्य पूर्णरूपेण अभी हुआ नहीं है। चित्रके तीसरे खानेमें इसी अवस्थाको दिखाया गया है। इसके बादकी अवस्था अंतिम खानेमें दिखाई है; यह वह अवस्था है, जब विशुद्धात्मासे और भी शक्तिप्रवाह प्राप्त करके कारणशरीर बन जाता है।

जो कुछ होता है वह एक उपमा द्वारा समझा जा सकता है। हम 'जैकके आत्मा' को, जो तीसरे खानेमें एक शंकु द्वारा दिखाया गया है, एक अस्पष्ट जलबाष्प-समूह मान लें, और फिर सोचें कि यह बाष्प जलके बिंदुमें परिवर्तित होजाता

है, और फिर कल्पना करें कि इस जलमें हवा फूँकी जाती है और एक बुद्बुदा बन जाता है। ठीक इसी प्रकारकी कुछ क्रिया 'जैकके आत्मा' पर की जाती है, जब विशुद्धात्मा उतरकर एक कारणशरीरका सृजन करता है। एक दैवी प्रवाह, जो विशुद्धात्माकी शक्ति है, मनोमय प्रकृतिमें, जो अबतक जैकके लिए आत्माका स्थान लिये हुए है, उतरती है। वह मनोमय प्रकृति एक कारणशरीरके रूपमें पुनः क्रमबद्ध हो जाती है और उस दैवीअंशके शरीरका कार्य करती है, जो एक मानव जीवात्मा बननेके लिए अवतीर्ण हुआ है।

यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि व्यक्तीकरणके इस क्रममें पशु ठीक उसी तरह मनुष्य नहीं बनता जैसे वनस्पतिसे पशुका विकास होता है। व्यक्तीकरणके समय तो, जो कुछ युगों तक पशु था, अब ईश्वरके एक अंश, विशुद्धात्माको धारण करनेके लिए वाहन हो गया है—विशुद्धात्मा स्वयं ऊपरसे अवतीर्ण हुआ है। जब तक पशुजगत् तथा उससे पहलेके अन्य जगतोंका समस्त अनुभव प्राप्त नहीं किया जा चुका है, विशुद्धात्मा एक कारणशरीरधारी जीवात्मा बन नहीं सकता। परन्तु, यद्यपि जो कुछ पशुजगत्ने उसके लिए तैयार किया है, वह उसका उपयोग करता है, वह स्वयं दैवीजीवन की शक्ति और चेतना है, जो मानवसे निम्न जगतके जीवनकी चेतनासे भिन्न है। इसीसे उच्चाति उच्च (मानव समान,) वनमानुस

और कमसेकम अवस्थावाले व्यक्तीकृत जीवमें एक गहरा अंतर रहता है। व्यक्तीकृत जीवमें विशुद्धात्माका जीवन है; परन्तु वनमानुसमें केवल पशुजीवनका ऊँचे प्रकारका व्यक्त स्वरूप है।

जवसे 'जैकका आत्मा' कुक्कुर समूहात्मासे पृथक होता है, वह कुत्ता रह नहीं जाता, यद्यपि वह अव भी कुत्तेका शरीर धारण किये हुए है। इस पृथक्करण और कारणशरीरके निर्माणकी अवस्थाओंके वीचमें और वहुतसे परिवर्तन होते हैं। यदि मनुष्य व्यक्तीकरणकी क्रियाको ठीक ठीक समझता हो, तो वह इस परिवर्तनकी गतिको वहुत कुछ वढ़ा सकता है और इस प्रकार हमारे पशुवंधु वड़ी शीघ्रतासे उस दैवी प्रवाहका स्वागत करनेकी स्थितिको पहुँच जायँ, जिस प्रवाहसे ही वे मानव आत्मा वनते हैं।

यह ऊँची कोटिके पशुओंके व्यक्तीकरणकी दैवी योजनामें सहयोग करनेका सुअवसर जीवनका एक वड़ा भारी वरदान है; लेकिन इस सुअवसरसे लाभ उठानेके लिए आज दिन अज्ञानके कारण वहुत कम लोग तय्यार हैं। वहुधा लोग यही समझते हैं कि पशु तो मनुष्योंके उपयोगके ही लिए हैं। यह ठीक है कि हमारी सभ्यताके निर्माणमें सहायता देना उनका काम है, और उनकी वुद्धि और उनका वल, दोनों इस काम आते हैं और आने चाहिए, परंतु मूलतः उनका अस्तित्व मनुष्यके कामके लिए न होकर, दैवीयोजनाके अपने निजी

उद्देश्यकी पूर्तिके लिए है। पशुओंके साथ अपने व्यवहारमें हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि जहाँ वे हमको अपनी शक्तिसे सहायता देते हैं, हमारा कर्तव्य है कि हम इस बातकी भी चिंता करते रहें कि वे इस प्रकार विकसित हों कि उनका व्यक्तीकरण जल्दीसे जल्दी हो सके। आजकल लोग घोड़ोंको घुड़दौड़में तेजीसे दौड़नेके लिए तय्यार करते हैं, कुत्तोंको शिकार करना सिखाते हैं, बिल्लियोंको भी चूहेके शिकारकी उत्तेजना देते हैं। यह सब अत्यंत अनुचित है; पशु तो हमारे संपर्कमें इसलिए आते हैं कि हम उनकी जंगली पशुवृत्तियोंको दूर करके उनमें मानव-प्रवृत्तियाँ जागृत करें। हमारा प्रत्येक कार्य जिसमें पशुओंकी चतुराईका उपयोग केवल अपने स्वार्थ साधनके लिए किया जाता है, पशुओंके विकासशील जीवनके प्रति अपराध है। यद्यपि हमारी बुद्धि और प्रकृतिके ऊपर हमारा अधिकार हमें पशुजगत् पर प्रभुत्व जमानेका अवसर देता है, फिर भी हमें उस अधिकारका प्रयोग पशुजगतके हितमें करना चाहिए, नकि केवल अपने स्वार्थसाधनके लिए—यह अमूल्य पाठ हमें अभी पढ़ना है। हम अपने दायित्व और सुअवसरको समझते नहीं हैं।

आठवाँ अध्याय

त्रिमूर्तिका कार्य

सभी दर्शनोंमें कुछ ऐसी बातें कही जाती हैं जिनकी परीक्षा मनुष्यकी सीमित बुद्धिसे हो नहीं सकती। मनुष्यके अनुभव मुख्यत: ऐसे जगत्‌से सम्बन्धित होते हैं जिनका संपर्क वह अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त करता है। उसकी कल्पनाशक्ति भी इन्हीं इन्द्रियजन्य अनुभवों द्वारा सीमित रहती है। इसलिए जब किसी दर्शनमें सृष्टिके आरम्भकी चर्चा की जाती है या भूतकाल अथवा भविष्यकी घटनाओंका रहस्योद्घाटन होता है, तो मनुष्य अपने निजी अनुभवोंके सहारे इन बातोंकी सत्यताकी जाँच नहीं कर सकता। आधुनिक विज्ञानकी बतायी कुछ बातोंके सम्बन्धमें भी यह बात लागू है। जब विज्ञान हमें बतलाता है कि समस्त ग्रह और स्वयं सूर्य एक समय एक नीहारिकाके रूपमें थे, तो हम वर्तमान कालमें उपस्थित नीहारिकाओंको देखकर तर्क द्वारा इस कथनकी सत्यता स्वींकार कर सकते हैं, किन्तु हमें पूर्णतया निश्चय इस

बातकी सत्यताका तभी होता, यदि हम उस आरम्भिक नीहारिका-को देख पाते और उसे ग्रहों और सूर्यमें विभाजित होते देखते।

जब विज्ञान हमें विकास-क्रमकी कहानी बताता है कि किस प्रकार अणुओंसे जीवित द्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) तथा जीवित द्रव्यसे मनुष्य तक, एक सीढ़ीके समान, श्रेणीके बाद श्रेणी द्वारा विकास होता है, तो हम इसे इसलिए स्वीकार नहीं कर लेते कि हम इसकी सत्यता सिद्ध कर सकते हैं, बल्कि इसलिए कि ऐसा मान लेनेसे हमारा मानसिक जीवन क्रमबद्ध और सार्थक हो जाता है। तर्कके अनुसार तो यदि सत्यकी कसौटी मानवका निजी अनुभवही होता, तो, वह विज्ञान और दर्शनके उन सभी तथ्योंको दूर रख देता जो उसके निजी अनुभवके क्षेत्रसे परे हैं। परन्तु ऐसा करनेसे वह अपना वर्तमान मानसिक सन्तुलन और कल्पनाकी सबलता खो बैठता।

मानव अपनी कल्पनाशक्तिके द्वाराही अपने व्यक्तित्व पर म्रियमाण शरीरद्वारा डाले हुए बन्धनोंका अतिक्रमण करता है। जितनाही विस्तृत मनुष्यका मानसक्षेत्र होगा, उतनीही बलवती उसकी कल्पना होगी ; और इन दोनोंके फलस्वरूप अपने आस-पासके वातावरणमें वह मनुष्य अधिक प्रभावशाली सिद्ध होगा। आचरणके क्षेत्रमें किसी भी जीवनदर्शनकी सफलता उसके हमें अपने वातावरणमें परिवर्तन कर सकनेकी शक्ति दे सकने पर निर्भर है। इसलिए दार्शनिक विचार हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक

हैं, यद्यपि कभी-कभी उन दार्शनिक विचारोंकी सत्यताकी जाँच हमारी सामर्थ्यके बाहर होती है ।

जब मनुष्य ऐसे दार्शनिक विचारोंके संपर्कमें आता है जिनका संबंध ऐसे विषयोंसे है, जो उसके अनुभवके क्षेत्रके बाहरके हैं, तो वह उन्हें उनका एक सरसरी तौरसे विहगावलोकन करके, जहाँ तक उसकी बुद्धि उन्हें स्वीकार करे, मान लेता है । जो विचारयोजना कोई दर्शन उसके लिए प्रस्तुत करता है, यदि वह न केवल संतोषप्रद अपितु उत्साहप्रद भी जान पड़े और यदि उसके जाने हुए तथ्य उस योजनामें ठीक-ठीक जम सकें, तो वह उस दर्शनको अपना एक कामचलाऊ दर्शन स्वीकार कर सकता है । ठीक इतना ही दावा, न इससे कम न अधिक, थिऑसोफीके उन विचारोंके लिए किया जा सकता है, जिनकी चर्चा इस तथा आगामी अध्यायमें की जायगी । यद्यपि साधारण जिज्ञासुके लिए ये विचार अभी कई जन्मों तक अनुभवसिद्ध न हो सकेंगे, फिर ये एक ऐसी विचारधारा, एक ऐसा जीवनदर्शन अवश्य प्रस्तुत करते हैं जो मनुष्यकी बुद्धिको आकर्षक और उसकी कल्पनाको उत्साहप्रद जान पड़ता है ।

१—ब्रह्मविद्या हमें बताती है कि यह विश्व, उसके अगणित तारागणके सहित एक सचेतन जीवनका प्रकटीकरण है । इस जीवनको हम ईश्वर, अल्लाह, आहुर्मज़्द, गॉड या लोगॉस

आदि नाना शब्दोंसे स्मरण करते हैं। यह जीवन एक व्यक्ति है, किंतु वह हमारी व्यक्तिसंबंधी समस्त कल्पनाओं और सीमाओंके परे है। हमको बताया जाता है कि विश्वव्यापी ब्रह्म (कॉस्मिक लोगॉस) एक है, अद्वितीय है (एकम् अद्वितीयम्); फिर भी वह विश्वको अनुप्राणित करता और गतिशील बनाता है। यह कार्य वह त्रिमूर्तिके रूपमें प्रकट होकर करता है। हिंन्दूधर्ममें ईश्वरकी इस त्रिमूर्ति को ब्रह्मा (स्रष्टा) विष्णु (पालनकर्ता) और शिव (संहारकर्ता), ईसाईधर्ममें यह त्रिमूर्ति ईश्वर-पिता, ईश्वर-पुत्र, और ईश्वर-पवित्रात्माके रूपमें दरसायी गई है। अन्य धर्मोंमें भी ईश्वरीय कार्यके तीन पहलुओंकी चर्चा की गई है।

२. विश्वव्यापी ब्रह्मके साथ उसके सात स्वरूप भी हैं जिन्हें सात (विश्वव्यापी) ग्रहेश्वर कहा जाता है। विश्वके समस्त तारागण जिनमेंसे प्रत्येक एक विकासक्रमका केन्द्र है, इन्हीं सातोंमेंसे किसी एकसे संबंधित है और उनके जीवनके प्रकट रूप हैं ठीक जैसे ये ग्रहेश्वर विश्वव्यापी ब्रह्मके प्रकट रूप हैं। चित्र ६० में इस आदिब्रह्म और उसके सात स्वरूपोंको दिखानेका प्रयत्न किया गया है। सात छोटे वृत्तों द्वारा सात ग्रहेश्वरोंको चित्रित किया गया है; इनके अंदर अनेक छोटे बड़े तारे हैं। संपूर्ण बड़ा वृत्त विश्वव्यापी ब्रह्मका द्योतक है।

३. इसी विश्वव्यापी जीवनमें हमारे सूर्यमंडलके अधीश्वर
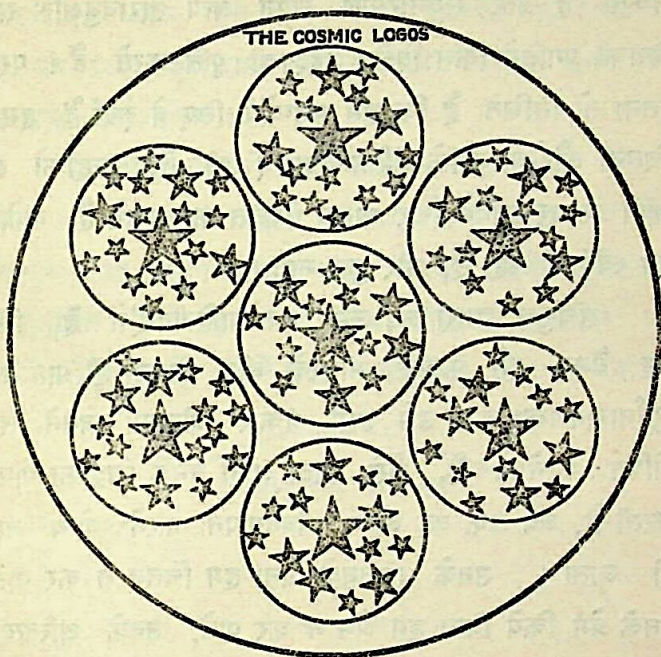
विश्वव्यापी ब्रह्म

चित्र ६०

सूर्यनारायणका निवास है। अनेक ताराओंके बीच एक ताराके रूपमें, एक विकास-क्रमके अधीश्वर हमारे सूर्यनारायणका अस्तित्व अपने पितृ-तुल्य सातमेंसे एक ग्रहेश्वरमें ही है, परन्तु इसके साथही वे उस 'एकमेवाद्वितीयम्' के जीवन, ज्योति, और वैभवको भी प्रत्यक्ष प्रतिबिम्बित करते हैं। कौन कह

सकता है कि सूर्यनारायण अपने अन्य तारावंधुओंके साथ विश्वकी प्रगतिमें किस विशेष उद्देश्यकी पूर्ति करते हैं? परन्तु इतना तो निश्चित है कि हम मनुष्योंके लिए वे ईश्वर हैं, हमारी चिंतना और कल्पनाके अंतिम लक्ष्य वे ही हैं, उन्हींको हम अपने विचार-गगनमें ईश्वर स्वरूप चित्रित कर सकते हैं, क्योंकि हम स्वयं भी वही हैं, और कुछ नहीं।

सचमुच हमारी जड़ उसी 'एकमेवाद्वितीयम्'में है, किंतु वह वैभव हमें फलीके भीतरके बीज जितना ही प्राप्त है। सूर्यनारायणका कार्य हमें उसी प्रकार जीवात्मा बनने तक पोषित करनेका है, जैसे माता अपने गर्भके शिशुका पोषण करती है, जब तक वह अलग जीवनयापन करने योग्य नहीं हो जाता। उनके चिंतनके बिना हम चिंतन न कर पाते, उनके प्रेम किये बिना हम प्रेम न कर पाते, उनके अस्तित्वके बिना हमारा अस्तित्व न होता। हमारा व्यक्तित्व उनके संपूर्ण व्यक्तित्वका अंशमात्र है; उनके अस्तित्वके विशाल गोले पर खचित छोटे-छोटे वृत्तोंके समान हम सब हैं। उनके कार्यका क्षेत्र एक विशाल गोला है, जिसकी त्रिज्या (अर्धव्यास)का आरंभ सूर्यसे होकर, सबसे दूरके ग्रहके सबसे अंतिम उपग्रह पर उसकी समाप्ति होती है। इस क्षेत्रके भीतर, इस आलोकित आकाशमें उनका कार्य चलता है और समस्त सूर्यमंडलको उनकी अपूर्व प्रकृतिका प्रकटीकरण करनेके लिए वे कल्पोंतक

अनुप्राणित करते रहते हैं। वे उस दिनकी वाट देखते रहते हैं, जब उनसे उद्भूत समस्त जीवन अपने वैभवको ज्ञात करके उनतक लौट आयेगा।

४. 'यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे'—जैसा ऊपर वैसे ही नीचे। विश्वव्यापी ब्रह्मके ही अनुरूप, सूर्यनारायण (सोलर लोगॉस) भी त्रिमूर्तिका रूप धारण करके अपने सूर्यमंडलको अनुप्राणित करते हैं। वे तीन मौलिक प्रकारोंसे कार्य करते हैं, जिन्हें धर्मोंमें स्रष्टा, पालनकर्ता, और संहारकर्ताका
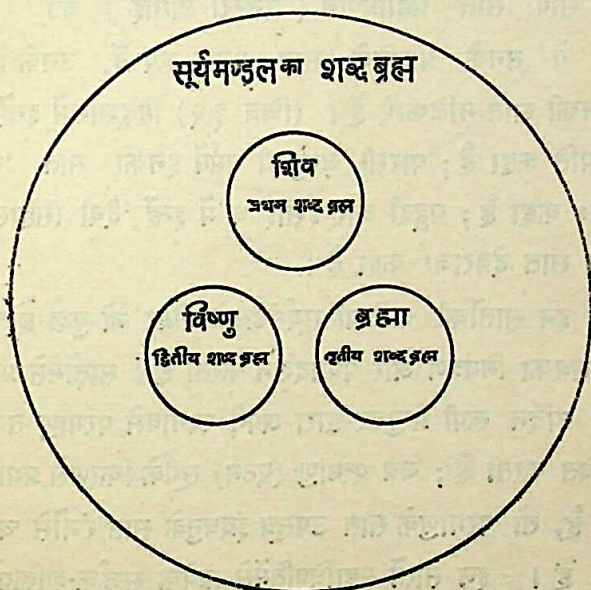
चित्र ६१

नाम दिया जाता है, या जैसे ईसाई धर्ममें पिता, पुत्र, और पवित्रात्मा। आधुनिक थिऑसोफीकी शब्दावलीमें इस त्रिमूर्तिको प्रथम शब्दब्रह्म, (फर्स्ट लोगॉस) द्वितीय शब्दब्रह्म (सेकण्ड लोगॉस) तथा तृतीय शब्दब्रह्म, (थर्ड लोगॉस) कहा है। ये तीनों एक ही सूर्यनारायण (सोलर लोगॉस) के तीन स्वरूप हैं—यद्यपि प्रकट रूपमें वे त्रिमूर्ति हैं, वास्तवमें वे एकही अविभक्त भगवान हैं। (चित्र ६१)

५. हमारे सूर्यमंडलके शब्दब्रह्म (सूर्यनारायण) के साथ साथ सात ग्रहाधिपति (प्लैनेटरी लोगॉइ) का करते हैं। ये उनके प्रकृतिके सात प्रकट रूप हैं, उनके अक्षय जीवनकी सात नलिकाएँ हैं। (चित्र ६२) हिंदूशास्त्रमें इन्हें सप्त प्रजापति कहा है; पारसी ज़रथुष्ट्री धर्ममें इनको सात 'अमेष स्पेण्ट' कहा है; यहूदी और ईसाई ध में इन्हें 'दैवी सिंहासनके समक्ष सात देवराज' कहा है।

इन सातोंकी शक्तियाँ सूर्यमंडलके भीतर जो कुछ होता है उस सबका नियंत्रण और पथप्रदर्शन करती हैं। सातोंमेंसे प्रत्येक अपने स्पंदन रूपी प्रत्युत्तर द्वारा अपने स्वभावसे परमाणु तकको प्रभावित करता है; जब परमाणु (एटम) सूर्यके किरणसे प्रभावित होता है, तो परमाणुके सात उपसूत्र इंद्रधनुके सात रंगोंसे चमक उठते हैं। इन सातों ग्रहाधिपतिमेंसे प्रत्येक सर्जक-शक्तियोंका अध्यक्ष होता है, और ये शक्तियाँ श्रेणीवद्ध रूपमें इसके अनुशा-

चित्र ६२
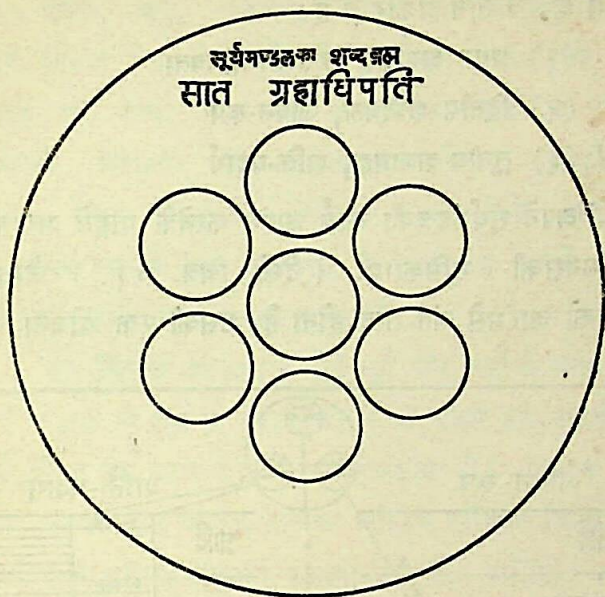
सनसे सूर्यमंडलको वनाने और सुरक्षित रखनेका कार्य करती हैं। प्रत्येकके नीचे आदित्य, वसु, ध्यानी बुद्ध, ध्यान-चौहान आदि देवता कार्य करते हैं। ईसाई धर्ममें इन्हें एंजल, आर्कैंजल, चेरुविम, सेरफिम आदि नाम दिये गये हैं।

६. चित्र ६३ में शब्द-ब्रह्म त्रिमूर्ति (ट्रिपल् लोगॉस) के अपने मंडलके अंदरके कार्यको संक्षेपमें दिखानेका प्रयास किया गया है। शब्दब्रह्म तीन प्रकारसे अर्थात् तीन रूपोंमें कार्य

करता है; वे तीन प्रकार ये हैं:—

(१) प्रथम शब्दब्रह्म, ईश्वरता-मानवता

(२) द्वितीय शब्दब्रह्म, जीवन-रूप

(३) तृतीय शब्दब्रह्म, शक्ति-पदार्थ

अपने सूर्यमंडलका कार्य आरंभ करनेके पहिले शब्दब्रह्मने 'दैवीमनसकी भूमिका'पर (देखो चित्र ९१.) जैसाकुछ मंडलको आरंभसे अंत तक होना है, उसकी एक योजना बना

चित्र ६२
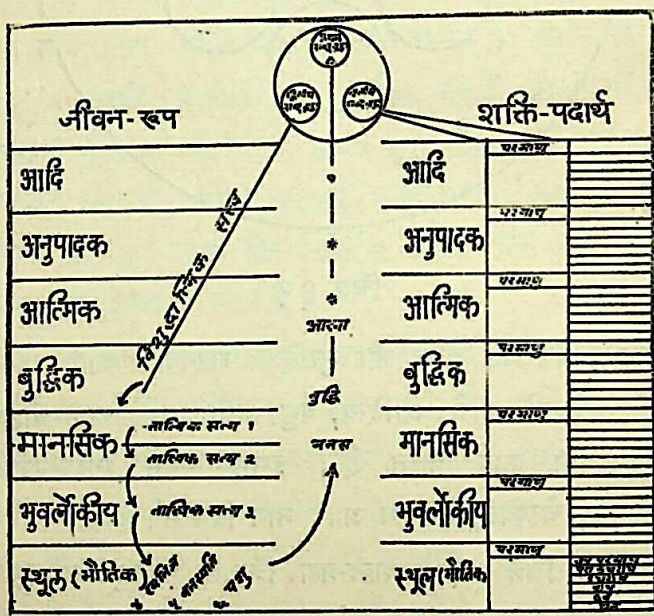
ली। शक्ति, रूप, भावनाएँ, विचार और अंतःस्फूर्तियाँ,-इन सबके कल्पित चित्र (आर्केटाइप्स) तैयार कर लिये और निश्चय कर लिया कि कैसे और किस किस दर्जे तककी सभ्यतामें मंडलकी विकासयोजनामें प्रत्येकका प्रकटीकरण होगा। फिर आकाशके निश्चित भागमें जिसे योजनाको कार्यान्वित करनेके लिए चुना गया है, शब्दब्रह्म अपने तृतीय रूप द्वारा कार्य करना आरंभ करता है।

उस विस्तृत आकाशमें जहाँ सूर्य और ग्रहोंको बनना था, आरंभमें कुछ भी दृश्य या अदृश्य वस्तु न थी, जिसे हम पदार्थ कह सकें, जैसा कि आज है। केवल मूलप्रकृति थी। विज्ञान ने भी एक समयमें इस आकाश-तत्वका अस्तित्व स्वीकार किया था। हमारे लिए उसका अनुमान कल्पनातीत है, क्योंकि पदार्थके जिस रूपसे हम परिचित हैं, वह "ईथरमेंके छेदों" से बना है।

आरंभमें -------अंधकार था
उस गहनताके स्तर पर
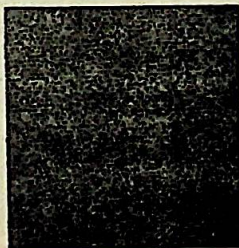
चित्र ६४

थिऑसोफीके अध्ययनमें मौलिक ईथर या पदार्थके अभावको 'कोइलॉन' या रिक्तता कहा है (चित्र ६४).

इस कोइलॉन या आकाशके ईथरीयतत्वमें विश्वव्यापी ब्रह्म (कॉस्मिक लोगॉस)ने अपनी शक्ति फूँकी और कोइलॉनको अगणित विन्दुओं पर हटाया। (चित्र ६५) प्रत्येक बुद्बुदा या प्रकाशविंदु वहाँ स्थित है जहाँ कोइलॉन नहीं है; इस प्रकार वास्तवमें प्रत्येक बुद्बुदा विश्व-ब्रह्मके तृतीय रूपकी चेतनाका एक विंदु है और जब तक विश्व-ब्रह्म कोइलॉनको हटाये रखनेकी इच्छा रखता है, तभी तक इन बुद्बुदोंका अस्तित्व है।

ईश्वरीय आत्मा जल के ऊपर विचरण कर रहा था
और
ईश्वर ने कहा, 'प्रकाश हो जाय'
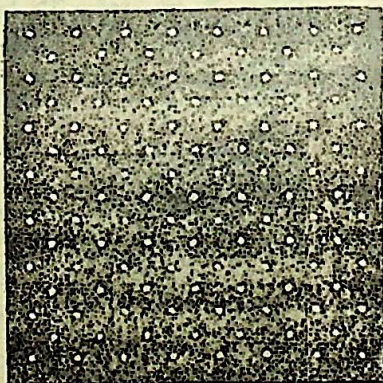
चित्र ६५

इसके बाद सूर्यमंडलके शब्दब्रह्म (सोलर लोगॉस) ने अपने तृतीयरूप द्वारा कार्य करते हुए इन सब बुद्बुदोंको चक्राकार (स्पाइरल्समें) प्रवाहित कर दिया ; प्रत्येक
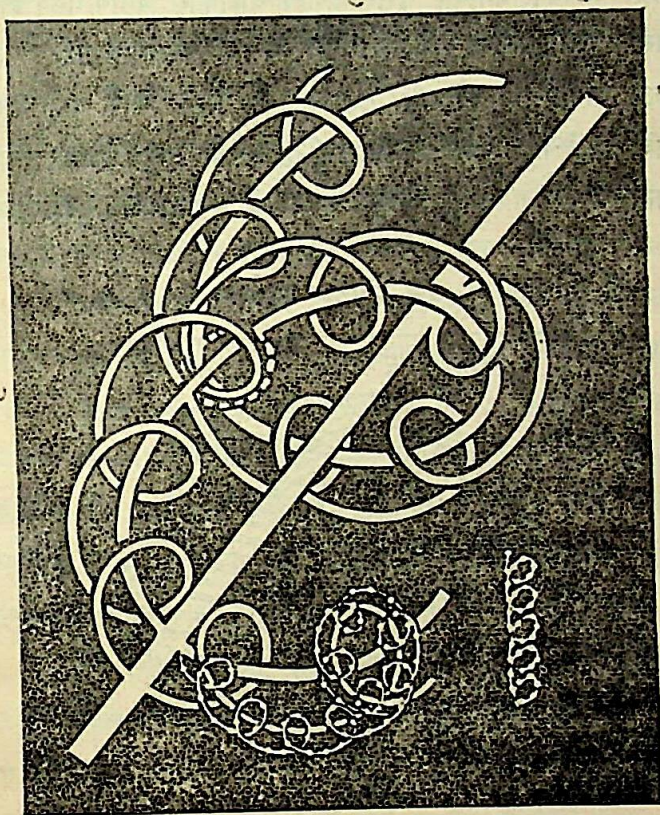
चित्र ६६

चक्रमें सात बुद्बुदे रहते हैं। इस आकारमें ये बुद्बुदे शब्दब्रह्मकी इच्छासे स्थित रहते हैं। (चित्र ६६) इन्हें 'प्रथम श्रेणीके चक्राकार' कहते हैं। इन प्रथमश्रेणीके चक्राकारोंके लंबे-लंबे फंदोंके सात चक्राकार बनाकर 'दूसरी श्रेणीके चक्राकार' बनाये गये। इसी तरह 'दूसरी श्रेणीके चक्रकारों' को भाँजकर 'तीसरी श्रेणीके चक्राकार' बनाये गये और इस तरह क्रमशः 'छठी श्रेणीके चक्राकार' तक बनाये गये। चित्र ६६ में प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणीके चक्राकार दिखाये गये हैं; यह श्वेत लकीर जो प्रथम श्रेणीमें बुद्बुदोंको

धन भौतिक परमाणु
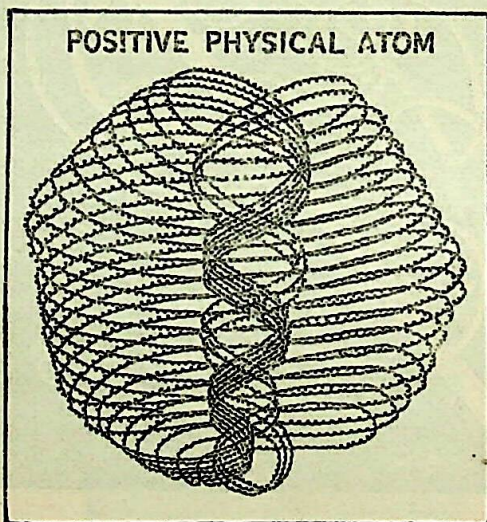
चित्र ६७

एक दूसरेसे संबद्ध करती है, या जो श्वेत लकीरें चक्राकारके फंदोंमें होकर द्वितीय और तृतीय श्रेणीमें निकलती हैं, ये लकीरें तृतीय शब्दब्रह्मकी इच्छाकी द्योतक हैं, जिसके द्वारा ये बुदबुदे चक्राकारमें स्थित रहते हैं।

दस समदूरी पर रहनेवाले सूत्रोंको, जो छठीश्रेणीके चक्राकारके बने होते हैं, ऐंठ और भाँजकर (चित्र ६७ में दिखाये ढंग पर) हमारे भौतिक पदार्थकी मौलिक इकाई 'परमाणु' (एटम) बनाया गया। इस क्रममें प्रथमश्रेणीके चक्राकार बनानेसे लेकर भौतिक परमाणुके निर्माण तक समस्त कार्य तृतीय शब्दब्रह्मकी चेतनाके इस उद्देश्यकी पूर्ति पर केन्द्रित होनेसे ही होता है; प्रत्येक श्रेणी अपना स्वरूप उस चेतनाकी इच्छाके ही अनुसार कायम रखती है। हमारा भौतिक परमाणु 'पदार्थ' (मैटर) नहीं है; वास्तवमें यह तो तृतीय विश्वब्रह्मकी चेतनाके अगणित विंदुओंका समूह इस रूप-विशेषमें एक कार्यविशेषके लिए सूर्यमंडलके शब्द-ब्रह्म द्वारा स्थिर रक्खा जाता है। यह विशेष कार्य है भूलोकका निर्माण।

परंतु भौतिक लोकके निर्माणसे पहिले पराभौतिक लोकोंका निर्माण होता है। इसे समझनेके लिए हमें चित्र ६३ पर फिरसे विचार करना होगा। इस चित्रमें तृतीय शब्द ब्रह्मके द्योतक छोटे गोलाकार (वृत्त) से दाहिने ओर दो लकीरें निकलती हैं। ये लकीरें दो क्रियाओंकी द्योतक हैं

जिन क्रियाओंसे लोक या भूमिकाएँ और उपलोक बनते हैं। प्रथम छोटी लकीर तो उस आरंभिक क्रियाकी द्योतक है जिससे तृतीय शब्दब्रह्म कोइलॉनके (Koilon) बुद्बुदोंके समूह बनाता है। इसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है—यही बुद्बुदे वे इकाइयाँ हैं, कह सकते हैं कि वे ईंटें हैं, जिनसे सूर्यमंडलके सातो लोकोंका निर्माण होता है।

पहिला आदिलोक कोइलॉनमें के बुद्बुदोंसे ही बनता है और इस लोकके परमाणुमें एक ही बुद्बुदा होता है। अनुपादक लोक में, जो कि उससे नीचेका दूसरा लोक है, प्रत्येक परमाणुमें ४९ बुद्बुदे होते हैं। आत्मिक परमाणुमें $४९^{२}$ या २४०१ बुद्बुदे होते हैं। और नीचेके लोकोंके परमाणुमें बुद्बुदोंकी संख्या यों चलती है: बुद्धिक लोकके परमाणुमें $४९^{३}$ या ४९×२४०१ बुद्बुदे; मानसिक लोकके परमाणुमें $४९^{४}$ या २४०१×२४०१ बुद्बुदे; भुवर्लोकके परमाणुमें $४९^{५}$ या ४९×२४०१×२४०१ बुद्बुदे; और भूलोकके परमाणुमें $४९^{६}$ अर्थात् २४०१×२४०१× २४०१ बुद्बुदे और कुछ बुद्बुदे और भी होते हैं, क्योंकि भूलोकके परमाणुकी बनावट विशेष प्रकारकी होती है।

जब सातोंमेंसे प्रत्येक लोकके परमाणु बन चुकते हैं, तब तृतीय शब्दब्रह्म प्रत्येक लोकके उपलोकोंका निर्माण करता है। यह दूसरी क्रिया लंबी लकीर द्वारा दिखाई गई है। यह

लकीर तृतीय शब्दब्रह्मके छोटे वृत्तसे दायीं ओरको खिंची है। प्रत्येक भूमिका या लोकके परमाणु दो, तीन, चार आदिके समूहोंमें प्रवाहित होकर उपलोक बनाते हैं। प्रथम या सबसे उच्च उपलोक एक एक परमाणुका ही बना है, किंतु दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे और सातवें उपलोक इन परमाणुओंके बने अणुओंसे बने हैं। इस तरह भूलोकका सबसे ऊँचा उपलोक भौतिक परमाणुओंकी इकाईके दो प्रकारोंसे बना है—एक धन (पॉज़िटिव) और दूसरा ऋण (निगेटिव)। इन्ही धन और ऋण परमाणुओंके संयुक्त समूहोंसे अन्य उपलोकोंका—उपपरमाणुवाले (सब-एटमिक), पराईथरीय, ईथरीय, वायूरूपी, तरल तथा घन—निर्माण होता है। इन्हीं भूलोकके उपलोकोंके निर्माण-क्रमके साथ-साथ रासायनिक तत्वोंका भी निर्माण होता है। इसका कुछ अधिक वर्णन गुप्त रसायन शास्त्र (ऑकल्ट केमिस्ट्री) की चर्चा करते समय किया जायगा।

तृतीय शब्दब्रह्मके कार्यके फलस्वरूप फिर सूर्यमंडलके सातोंलोक तथा उनके उपलोक बनते हैं। यह कार्य अभी संपूर्ण नहीं हुआ है और अब भी चल रहा है। सभी लोकोंकी प्रकृतिको अनुप्रणित करनेवाली शक्ति इन्हीं तृतीय शब्द ब्रह्मकी है। उनकी शक्तिका एक रूप विद्युत् है, इससे सर्वथा भिन्न दूसरा रूप है कुंडलिनी, जो सभी उच्चकोटिके जीवोंके शरीरोंमें पायी जाती है।

तृतीय शब्दब्रह्मद्वारा निर्मित सातलोकोंमें आगे चलकर द्वितीय शब्दब्रह्मका कार्य आरम्भ होता है। उनकी शक्ति उस प्रकारकी है जिसे जीवन-रूपमयी कह सकते हैं। सातो लोकोंकी प्रकृतिको द्वितीय शब्द-ब्रह्म अपनी शक्तिसे अनुप्राणित करता है और इस प्रकार उन्हे उन रूपोंके निर्माणके योग्य बनाता है, जिन रूपोंमें 'जीवन' का गुण भी रहता है। यह जीवन उन लोकोंकी प्रकृतिके भिन्न-भिन्न रूप बनाता है और ये रूप तभी तक बने रहते हैं, जब तक द्वितीय शब्द-ब्रह्मका जीवन उस प्रकृतिको उस रूपमें स्थिर रखता है।

अब सबसे प्रथम बार जन्म, वृद्धि, जरा और मृत्युके दृश्य प्रकट होते हैं। रूप अथवा शरीरका जन्म होता है, क्योंकि द्वितीय शब्दब्रह्मको उस रूपद्वारा विकासका कार्यविशेष करना है; उस विकासकार्यके समय यह शरीर वृद्धिको प्राप्त होता है; जब यह कार्य समाप्त हो चुकता है और द्वितीय शब्दब्रह्म अपने जीवनको उस रूपसे धीरेधीरे खींच लेने लगता है, क्योंकि जो कुछ गुण उस शरीर अथवा रूप द्वारा विकसित किये जा सकते थे विकसित हो चुके, तो रूप जराको प्राप्त होकर विघटित होने लगता है, और जब द्वितीय शब्दब्रह्मका समस्त जीवन खिंच चुकता है, तो शरीर मृत्युको प्राप्त हो जाता है। वह जीवन पुनः दूसरे रूपका निर्माण कर विकासशील जीवनको नये अनुभव प्राप्त करनेका अवसर देता है, जिससे उसका अधिक विकास तथा

आत्म-प्रकाशन संभव हो। भूलोकमें द्वितीय शब्दब्रह्मकी शक्तिका प्रकट रूप 'प्राण' है।

सूर्यमंडलके चारो ऊँचे लोकोंमें द्वितीय शब्दब्रह्मके व्यक्त रूपको विशुद्धात्मिक सत्त्व (मोनाडिक एसेन्स) कहते हैं; यह क्रमशः एक श्रेणीमें उतरता है और इस उतारमें प्रत्येक श्रेणी पर वह विधिविधानके अनुसार, उसके लिए आयोजित वृद्धि प्राप्त करता है। बहुत कालमें, जिसे 'माला' कहते हैं, विशुद्धात्मिक सत्त्व पहिले आदि लोककी प्रकृतिमें प्रकट होता है; 'माला-काल'के अंतमें वह फिर द्वितीय शब्दब्रह्ममें लौट जाता है और दूसरी 'माला' के आरंभमें अनुपादक लोककी प्रकृतिको अनुप्राणित करनेको प्रकट होता है। दूसरी मालाका कार्य वह प्रथम मालामें अर्जित समस्त शक्तियों और क्षमताके साथ आरंभ करता है।

एक मालासे दूसरी मालामें यह विशुद्धात्मिक सत्व (मोनाडिक एसेन्स) एक लोकसे दूसरे लोकमें उतरता है और अपने पाँचवे कालचक्र (साइकूल) के आरंभमें यह उस मनोलोककी प्रकृतिको अनुप्राणित करने लगता है। अभी तक अपने अनुभवके लिए विशुद्धात्मिक सत्व एक ही 'विकास-योजना' के* क्षेत्रतक सीमित नहीं था; किंतु

* 'माला' तथा 'विकास योजना' आदि शब्दोंका तात्पर्य अगले अध्यायमें स्पष्ट हो जायगा।

अवसे उसके समस्त अनुभव हमारी ही 'विकास-योजना' में सीमित होंगे। हमारे मनोलोककी प्रकृतिमें प्रवेश करनेके वादसे इसे 'तात्विक सत्त्व' (एलीमेंटल एसेन्स) का नाम देते हैं। उच्च मानसिक लोककी प्रकृतिमें के अपने विकासकालके समय द्वितीय शब्दब्रह्मका यह जीवन 'प्रथम तात्विक सत्त्व' कहलाता है; मालाके अंतके बाद दूसरी मालाके आरंभके समय वही जीवन फिर प्रकट होता है और निम्न मानसिक लोककी प्रकृतिको अनुप्राणित करता है—इस अवस्थामें इसे 'द्वितीय तात्विक सत्त्व' कहते हैं। अगली मालाके समय भुवर्लोककी प्रकृतिको अनुप्राणित करके यह 'तृतीय तात्विक सत्त्व' कहलाता है।

यही द्वितीय शब्दब्रह्मका जीवनही मानसिक और भुवर्लोकीय प्रकृतिको अनुप्राणित कर उनको वह विचित्र सजीवता प्रदान करता है, जिससे विचार द्वारा संचालित मनो लोकका, या वासना द्वारा संचालित भुवर्लोकका हल्कासे हल्का कंपन भी मनोलोक तथा भुवर्लोककी प्रकृतिके रूप वना देते हैं, जो 'विचार चित्रों' (थॉट-फॉर्म्स) के रूपमें मूर्तिमान होते हैं।

एक मालासे दूसरी मालामें प्रकृतिमें और भी नीचे उतरते हुए, द्वितीय शब्दब्रह्म भुवर्लोकीय प्रकृतिको अनुप्राणित करके फिर भूलोककी प्रकृतिको अनुप्राणित करता है। सबसे पहला प्रभाव इस अनुप्राणित होनेका यह होता है कि रासायनिक तत्वोंमें

आपसमें संयुक्त होनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। तृतीय शब्द ब्रह्म हाइड्रोजन और ऑक्सिजन तत्वोंकी सृष्टि करता है, परन्तु जब द्वितीय शब्दब्रह्मका जीवन भी अवतीर्ण होता है तभी हाइड्रोजनके दो परमाणु ऑक्सिजनके एक परमाणुसे संयुक्त हो सकते हैं और इस प्रकार जलकी सृष्टि हो सकती है। जिस रूपमें हम भौतिक प्रकृतिको जानते हैं वह रूप द्वितीय शब्द-ब्रह्मके कार्यके पश्चात्का है; उसीके पथप्रदर्शनमें खनिज जगत् प्रकट होता है, और घन (ठोस) पृथ्वीका निर्माण करता है। अब भौतिक प्रकृति सौंदर्य और सामंजस्यके साथ, गणितकी शुद्धता और सूक्ष्मता लिये हुए, रवोंका रूप धारण करती है; प्रत्येक भौतिक आकारके द्वारा विधिविधान (दैवी योजना)के अनुसार द्वितीय शब्दब्रह्मका कार्य होता है। खनिज हमारी दृष्टिमें अचर तथा निर्जीव मृत्तिका मात्र है; परन्तु द्वितीय शब्दब्रह्म इस निर्जीव दिखनेवाले मृत्तिका-समूहमें निरन्तर कार्यशील है। सचमुच यह भगवानका आत्म-बलिदान है, ईश्वर जड़ प्रकृतिमें गड़े हुए हैं।

खनिज जगत्के निम्नातिनिम्न स्तरपर उतरनेके बाद द्वितीय शब्दब्रह्मका जीवन अपनी उत्क्रान्ति (चढ़ाव) आरंभ करता है। उसका अगला व्यक्त रूप वनस्पति-जगत् होता है। इस श्रेणीके आरंभमें पृथ्वीके पदार्थोंमें एक नयी क्षमता आ जाती है, यह नयी क्षमता है जीवनके वाहन बननेकी शक्ति, जीवनके

उस रूपकी जिसे हमारी आँखे भी देख सकती हैं। रासायनिक तत्वोंके समूह बन जाते हैं और एक रहस्यमय जीवन उनमें प्रकट होकर उनसे जीवित द्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) बना देता है। द्वितीय शब्दब्रह्मकी देखरेखमें इस जीवित द्रव्यमें परिवर्तन होते हैं और उससे वनस्पति-जगत्‌का निर्माण समय पाकर होता है (देखो पिछला चित्र ४)। बड़े लम्बे अनुभवके बाद, एक मालाकालमें धीरे-धीरे विकसित होकर यह वनस्पति जगत् अगली मालामें पशु-जगत्‌के रूपमें प्रकट होता है। (चित्र ९) समय पाकर अंतमें इस पशुजगत्‌से उच्चकोटिके पशुओंका जन्म होता है, जिनमें व्यक्तीकरण प्राप्त करनेकी क्षमता होती है।

जब पशुसमूह-आत्मा बन चुकता है, जैसा कि पिछले अध्यायमें बताया जा चुका है और कोई एक पशु व्यक्तीकरण योग्य हो चुकता है, तब प्रथम शब्दब्रह्मका कार्य आरंभ होता है। वह अपना एक अंश, एक विशुद्धात्मा (मोनाड) नीचे भेजता जो कारणशरीरमें स्थित जीवात्मा बनाता है। मानव-आत्मा अपने स्रष्टाके प्रतिबिम्ब स्वरूप बनता है। अब उसका विकास आरम्भ होता है। अपने ईश्वरत्वको पहचानना, अपने साथियोंके भी ईश्वरत्वको पहचानना, अपने चारो ओर समस्त प्रकृतिमें ईश्वरके दर्शन करना, यही विकास है। भूलोकमें प्रथम शब्दब्रह्मकी शक्तिका व्यक्तरूप, नाशवान शरीरमें स्थित, अमर जीव है।

* * * *

इस प्रकार बड़े सरसरी तौरसे हमने त्रिमूर्तिके कार्यका सिंहावलोकन किया। यह कार्य अतीतकालसे चला आया है और आज भी उपनिषद्के शब्दोंमें 'गर्भमें ही है'। ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूपमें वे संसारको बनाते और बिगाड़ते रहते हैं और निरन्तर उनका उद्देश्य अपनी योजनाकी पूर्ति ही है। इस विधानको समझना ही विराटरूप-दर्शन है; उस विधानके लिए कार्य करना अपने नश्वर स्वभावको अमरत्व में परिवर्तित कर देना है। जीवनमें अमरत्व, कालमें शाश्वतता, मानवतामें ऐश्वर्य—ये उन्हें प्राप्त होते हैं, जो विधिविधानको समझकर उसके लिए निरन्तर कार्यमें रत रहते हैं।

नवाँ अध्याय

जीवनकी कोटियाँ

आधुनिक विज्ञानने विकासकी कल्पनाका बड़ा सुंदर प्रतिपादन किया है, फिर भी अभी वह थिऑसोफीकी कल्पनाकी विशालता और महत्ताको नहीं पहुँच पाया है। 'जीवन' शब्दका अर्थ थिऑसोफीके साहित्यमें विज्ञानसे कहीं अधिक गहन और महत्वपूर्ण समझा जाता है। थिऑसोफीमें जीवनको आधुनिक विज्ञानकी तरह केवल मानव, पशु और वनस्पति जगत् तकही सीमित नहीं समझा जाता ; यहाँतो खनिजकी प्रकृति तथा खनिजसे निम्नतर अवस्थामें अदृश्य प्रकृति तथा मानवसे उच्चतर जगत्की अदृश्य प्रकृतिमें भी जीवनका अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। चित्र ६८ में हमने विकासशील जीवनकी एक धाराको खनिजसे मानव तक चढ़ते हुए संक्षेपमें दिखानेकी चेष्टा की है। यदि हम इस चित्रका मिलान चित्र ९ से करें तो स्पष्ट हो जायगा कि विकासशील जीवनकी और भी धाराएँ हैं जो विना मानवजगत्को स्पर्श

किये, उसी स्तरके अन्य जीवनजगत्में होकर मानवसे उच्च-जगत्को प्राप्त करलेती हैं।

विकासशील जीवनकी कोटियाँ
मानव जाति
पशु जीवन ↑
वनस्पति जीवन ↑
खनिज जीवन ↑
तात्विक सत्व ३ ↑ (भुवर्लोकीय प्रकृति)
तात्विक सत्व २ ↑ (निम्न मनोलोकीय प्रकृति)
तात्विक सत्व १ ↑ (उच्च मनोलोकीय प्रकृति)

चित्र ६८

चित्र ६८ में केवल जीवनके उन रूपोंका दिग्दर्शन है जो अपने विकासके फलस्वरूप हमारी मानवजातिके समान ही किसी मानवजातिमें प्रकट होते हैं। इस चित्रसे हम देखेंगे कि श्रेणी-श्रेणी होकर शब्दब्रह्मका जीवन तीन प्रकारके तात्विक सत्वोंमें प्रकट होता है और आगे चलकर खनिज, वनस्पति,

पशुजीवन और मानवजातिके रूपमें प्रकट होता है। एक श्रेणीसे दूसरी श्रेणीमें परिवर्तन किस प्रकार होता है, यह पिछले अध्यायमें बताया जा चुका है और चित्र ९९ में उच्चातिउच्च पशुका मानवजगत्‌में प्रवेश दिखाया गया था।

तात्विक सत्त्व १ से लेकर मानवजाति तक विकासशील जीवनकी सातो श्रेणियाँ मिलकर 'जीवन-धारा' कहलाती है। जीवन और चेतनाके अन्य स्वरूप भी अवश्य ही 'जीवन-धाराएँ' हैं, किंतु इस कठिन विषयको स्पष्ट करनेके लिए 'जीवनधारा' शब्द जीवनके उन्हीं रूपोंके लिए उपयोगमें लाया गया है, जो विकासपथ पर हमारी मानवजातिसे घनिष्ठ रूपसे संबद्ध हैं, जैसा कि चित्र ६८ में दिखाया गया है।

इन सभी महान् परिवर्तनोंमें बड़ा लंबा समय लगता हैं; फिर भी समयके क्षण-क्षणमें विकासकार्य एक पूर्वनिश्चित योजनाके अनुसार होता रहता है। रूप और चेतनाका प्रत्येक प्रकार विकासमें अपने सुनिश्चित समय पर प्रकट होता है और यह प्रकटीकरण दैवीयोजनाके कार्यकर्ताओंकी देखरेखमें होता है—इन कार्यकर्ताओंका काम ही विकासके दुरूह कार्यक्रमकी देखरेख करना है। कालके इन विभागोंके संबंधमें हमें सालोंकी संख्याकी दृष्टिसे उतना विचार न करना चाहिए जितना कि दैवीयोजनाकी पूर्तिके लिए विकास-कार्यके निर्दिष्ट परिमाणकी दृष्टिसे।

'सभ्यताओंके उत्थान और पतन' संबंधी द्वितीय अध्यायमें यह बताया गया था कि जितने समय मानवजाति पृथ्वी पर रहती है उस समयके भीतर सात मूळजातियाँ प्रकट होती हैं और प्रत्येक मूळजातिकी सात उपजातियाँ होती हैं। जितना समय उस कार्यको पूर्ण करनेमें लगता, जो कि सात मूळजातियों और उनकी उपजातियों द्वारा होना है, उस समयको एक कल्प या 'गोलक्रिया-काल' (वर्ल्ड पीरिअड) कहते हैं। एक कल्पभर विकासयोजना, जिससे हमारी जीवनधाराके सातों कोटिके जीवन पर प्रभाव पड़ता है, पूर्णरूपसे चालू रहती है; जीवन-धाराका आरंभ प्रथम मूळजातिकी प्रथम उपजातिके प्रकट होनेके समयसे होता है, ऐसा समझना चाहिए और उसकी समाप्ति तब होती है, जब सातवीं मूळजातिकी सातवीं उपजाति अपना कार्य संपूर्ण कर चुकती है।

जब एक कल्प विशेषका निर्दिष्ट कार्य समाप्त हो चुकता है, तब जीवनधारा हमारी पृथ्वीसे प्रयाण करके हमारे सूर्य-मंडलके किसी दूसरे गोले पर अपना विकास-कार्य आरंभ-करने चली जाती है। इस नये गोले पर जीवनकी प्रत्येक श्रेणी, तात्त्विक सत्त्व १ से लेकर मानवजाति तक, अपना कार्य पुनः आरंभ कर देती है और अपना आगेका विकासक्रम जारी रखती है।

यहाँ भी यह विकास, जहाँतक मानव जातिका संबंध है,

सभ्यताओं और संस्कृतियोंके विकासके द्वारा होता है—ये सभ्यताएँ सात मूलजातियों और उनकी उपजातियोंके द्वारा विकसित होती हैं। इस नये गोले परका विकासकार्य जब समाप्त हो चुकता है, तब जीवनधारा किसी अन्य गोलेपर चली जाती है, और वहाँकी नयी परिस्थितियोंमें अपना कार्य आरंभ करती है और दैवी विधानके अनुसार निर्दिष्ट विकासकार्यको पूरा करती है।

जिस जीवनधारासे हमारी पृथ्वीकी मानवजातिका संबंध है, उसके कार्यको समझनेके लिए हमें चित्र ६९ का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना होगा। हमारी जीवन-धाराको अपने विकासके लिए सूर्यमंडलके सात ग्रहोंकी आवश्यकता पड़ती है; इनमेंसे तीन ग्रह, पृथ्वी, मंगल और बुध, स्थूल भौतिक ग्रह हैं; शेष चारो ग्रह अदृश्य प्रकृतिके बने हुए हैं। जैसे ये दृश्य ग्रह सूर्यके चारो ओर परिक्रमा करते हैं, वैसे ही ये अदृश्य ग्रह भी करते हैं, परंतु इन अदृश्य ग्रहोंकी प्रकृति पराभौतिक प्रकारकी होती है। इन चार अदृश्य ग्रहोंमेंसे दो 'ख', और 'छ' * भुवर्लोकीय प्रकृतिके बने हैं, और शेष दो 'क' और 'ज' निम्नमनोलोकीय प्रकृतिके। प्रत्येक गोला आकाशमें अलग अलग स्थित है और प्रत्येक

---

* गोलाकार 'छ' को ठीक 'ख' के ही समान समझिये। 'छ' के वृत्तका कुछ अंश सादा रह गया है, वह भी 'ख' के समान पूर्ण होना चाहिए था।

ग्रह अपनेमें उसी प्रकार संपूर्ण है, जैसे मंगल, पृथ्वी और बुध यदि हम चित्र ६९ पर दृष्टि डालें और ध्यानसे उस अंशको

हमारी ग्रहमाला क्रमांक ४
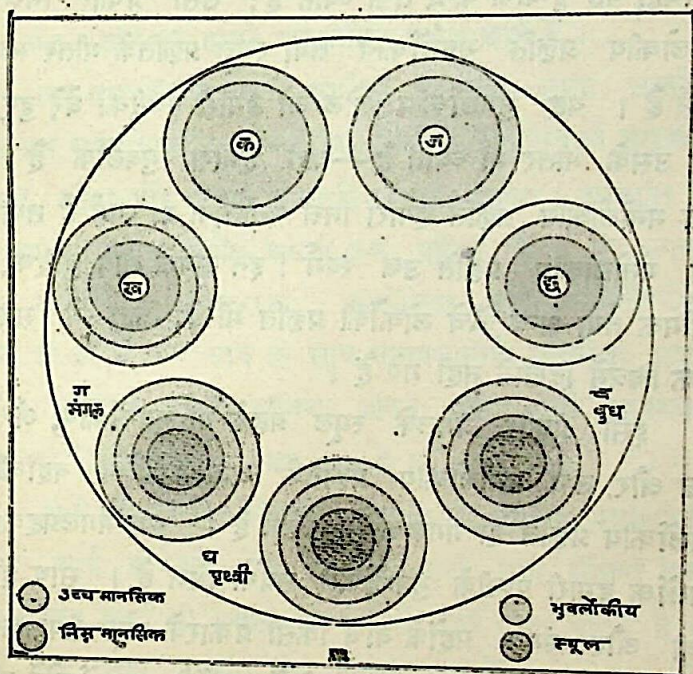
चित्र ६९

देखें जो पृथ्वीका प्रतीक है, तो हमें दीख पड़ेगा कि पृथ्वी स्थूल प्रकृतिकी बनी दिखायी गयी है—स्थूल प्रकृतिके चारो ओर भुवर्लोकीय, निम्न मनोलोकीय, तथा उच्च मनोलोकीय प्रकृति

भी है। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि सूक्ष्मतर प्रकृति अपनेसे स्थूलतर प्रकृतिके भीतर भी व्याप्त है। इस प्रकार देखनेमें तो भुवर्लोकीय प्रकृति स्थूल स्तरसे ऊपर ही दिखाई देती है, किंतु वह पृथ्वीके केन्द्र तक व्याप्त है; उसी प्रकार निम्न मनोलोकीय प्रकृति भुवर्लोकीय तथा स्थूल प्रकृतिके भीतर भी व्याप्त है। यह भुवर्लोकीय खोल जो हमारी पृथ्वीको घेरे हुए और उसके भीतर भी व्याप्त है—यही हमारा भुवर्लोक है। निम्न मनोलोकीय प्रकृति हमारा निम्न मनोलोक या स्वर्ग है तथा उच्च मनोलोकीय प्रकृति उच्च स्वर्ग। इन सबके साथ बुद्धिक, आत्मिक तथा अन्य ऊँचे लोकोंकी प्रकृति भी है, किंतु ये सब लोक चित्रमें दिखाये नहीं गये हैं।

इसी प्रकार मंगलके स्थूल ग्रहके भी भुवर्लोकीय, और निम्न और उच्च मनोलोकीय प्रकृतिके आवरण हैं। वहाँकी भुवर्लोकीय प्रकृति ही मंगलका भुवर्लोक है। यह मंगलग्रहका भुवर्लोक हमारी पृथ्वीके भुवर्लोकसे सर्वथा भिन्न है। साथ ही पृथ्वी और मंगल ग्रहोंके बीच किसी प्रकारके स्थूल संपर्कका कोई साधन नहीं है और न इन दोनों ग्रहोंके भुवर्लोकोंमें ही किसी प्रकारका संपर्क साध्य है। मंगलके भी अपने निम्न और उच्च स्वर्ग हैं। बुधके भी इसी प्रकार भुवर्लोक और निम्न तथा उच्च स्वर्ग हैं। जब हम अदृश्य ग्रह 'ख' और 'छ' पर विचार करते हैं, तो हम देखते हैं कि इन ग्रहोंके स्थूल गोले नहीं हैं।

ये ग्रह भुवर्लोकीय प्रकृतिके हैं, पर इनके भी अपने निम्न तथा उच्च स्वर्ग हैं। ग्रह 'क' और 'ज' निम्न स्वर्लोकीय प्रकृतिके बने हैं और उनके उच्च स्वर्ग भी हैं। इस प्रकार ये सातो ग्रह संपूर्ण हैं और सभी सूर्यके चारो ओर परिक्रमा करते रहते हैं; किंतु केवल तीन ही हमारे चक्षुओंको प्रत्यक्ष होते हैं।

अब हम जीवन-धाराके कार्यकी रूपरेखा समझ सकते हैं। इस समय पृथ्वीपर जीवन-धारा मानवजातिके संबंधमें उसकी तीसरी, चौथी और पाँचवी मूलजातिकी छठी शाखा (उपजाति) के प्रथम परिवर्तित रूपोंके आरंभ तक पहुँची है। ये प्रथम रूप अमेरिकाके संयुक्तराज्य, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैण्डमें प्रकट हो रहें हैं। साथ ही साथ मानवजातिके अतिरिक्त पशु जीवन, वनस्पति जीवन, खनिज जीवन तथा तीनों तात्विक सत्त्वोंका विकासकार्य भी चल रहा है।

अभी इस पृथ्वीपर पाँचवीं मूलजातिकी सातवीं शाखाका संपूर्ण कार्य होनेको शेष है और छठी तथा सातवीं मूल जातियोंका कार्य भी उनकी उपजातियों समेत होना बाक़ी है। हम कह नहीं सकते कि कितने लाखों वर्ष इस कार्यमें लगेंगे; परन्तु जब तक यह सब कार्य संपूर्ण न हो जाय, तब तक जीवनधाराका पृथ्वी परका कार्य समाप्त न होगा।

जब सातवीं मूलजातिकी सातवीं शाखा भी अपना संदेश विकासक्रमको दे चुकेगी, तो पृथ्वीपर और कुछ कार्य

करनेको शेष न रह जायगा। जीवनधारा तब आगेके ग्रह पर जाकर अपना कार्य आरम्भ करेगी। यह अगला ग्रह बुध है। जैसे पृथ्वीपर है, उसी प्रकार बुध परभी जीवनधाराकी, तात्विकसत्व संख्या १ से लेकर मानवजाति तक, सभी श्रेणियाँ होंगीं और उनका विकास-क्रम जारी रहेगा। मानव जगत्में सात मूलजातियाँ और उनकी शाखाएँ होंगी। प्रत्येक मूलजाति अपने दृश्य और अदृश्य शरीरोंकी बनावटके द्वारा चेतना और क्रियाशक्तिके नये रूप और अभिव्यक्ति संभव करती है; इसी अभिव्यक्तिके लिए ये मूलजातियाँ और उनकी उप-जातियाँ होती हैं।

जब जीवनधारा बुधग्रहपरका कार्य समाप्त कर लेगी, तब अगले ग्रह 'छ' पर चली जायगी—यह ग्रह भुवर्लोकीय प्रकृतिका है और इसका स्थूल रूप है ही नहीं। स्पष्ट है कि इसपर भौतिक जीवन हो ही नहीं सकता। विकासका जो कुछ कार्य वहाँ होना है, भुवर्लोकीय तथा अन्य उच्च और सूक्ष्मतर प्रकृतिमें होगा। 'छ' ग्रहपर कार्य समाप्त करके जीवनधारा 'ज' ग्रहपर जायगी। यह 'ज' ग्रह निम्नस्वर्लोकीय प्रकृतिका बना है और यहाँ समस्त विकास इसी या इससे उच्चतर प्रकृतिमें ही होगा। यहाँका कार्य समाप्त करके जीवनधारा फिर 'क' ग्रहपर चली जायगी। 'क' से फिर 'ख' पर जहाँ भुवर्लोकीय प्रकृतिमें विकासका क्रम चलता रहेगा। 'ख'

ग्रहपर कार्य समाप्त करके जीवनधारा फिर मंगल ग्रह पर आयेगी जहाँ विकासकार्य स्थूल, भुवर्लोकीय तथा सूक्ष्मतर प्रकृति इन सबपर होगा। मंगल पर कार्य समाप्त करके जीवनधारा पृथ्वीपर आ जायगी, जहाँ फिरसे नवीन मानव, पशु और वनस्पतिके प्रकारों द्वारा विकासका क्रम चलेगा। जब जीवनधारा सातो ग्रहोंका एक चक्कर लगा चुकती हैं, तो जो समय इस पूरे चक्करमें लगता है, उसे एक 'परिक्रमा' या 'महाकल्प' (राउण्ड) कहते हैं।

जीवन-धाराकी यात्राका जो वर्णन अभी दिया गया है, उसमें इसे पृथ्वीसे बुध और फिर छ, ज, क और ख तथा मंगल पर होकर पृथ्वीपर लौटने तक एक 'परिक्रमा' बताई गयी है। पर वास्तवमें जीवन-धाराका आरंभ 'क' ग्रहसे होता है, फिर 'ख' ग्रहपर जाती है, वहाँसे मंगल, फिर पृथ्वी, फिर बुध, 'छ,' और 'ज' ग्रहोंपर। हमारी वर्तमान जीवनधारा बहुतकाल पहले पहिली परिक्रमामें ग्रह 'क' पर आरंभ हुई थी और तीन संपूर्ण परिक्रमाएँ कर चुकी है; इस कार्यको समाप्त करके चौथी परिक्रमा ग्रह 'क' पर फिरसे आरंभ हुई। जीवनधारा वहाँसे 'ख' पर आयी, 'ख'से मंगलपर और मंगलसे पृथ्वीपर और अब पृथ्वीपर कार्य हो रहा है।

विकास-क्रमकी योजनामें हम इस समय चौथी परिक्रमाके चतुर्थ ग्रह (पृथ्वी) पर हैं। यह हमारी विशद (सात परिक्रमा-

वाली) विकास-योजनाका ठीक मध्यबिंदु है, क्योंकि जीवन-धाराको अभी चौथी परिक्रमा बुध, 'छ' और 'ज' पर जाकर पूर्ण करनी है। इसके बाद पाँचवीं, छठी, और सातवीं परिक्रमाएँ होंगी। जब जीवनधारा ये सातों परिक्रमाएँ कर चुकेगी, तो इन सातों परिक्रमाओंमें जो समय लगेगा, उसे एक 'माला' (चेन) काल कहते हैं।

इन्हीं तथ्योंको चित्र ७० में संक्षेपमें दिखाया गया है सात

सात उपजातियों की	एक मूलजाति
,, मूलजातियों का	एक कल्प
,, कल्पों का	एक महाकल्प या परिक्रमा
,, परिक्रमाओं की	एक माला
,, मालाओं की	एक विकासयोजना
,, तथा अधिक विकासयोजनाओं का	हमारा सूर्यमंडल

चित्र ७०

उपजातियोंकी एक मूलजाति बनती है; सात मूलजातियोंके विकास-कार्यके कालको एक कल्प कहते हैं; सातो ग्रहों पर एकके बाद एक, जीवनधाराके कार्यकालके सात कल्पोंकी,

अर्थात् ४९ मूलजातियों की एक परिक्रमा होती है। और इस प्रकारकी सात परिक्रमाएँ, (अर्थात् ४९ कल्प) जिनमें जीवन-धारा एक ग्रहसे दूसरे ग्रह पर जाती है, एक माला बनाती हैं।

परंतु जीवन और रूपका विकासकार्य, सूर्यमंडलमें, एक ही मालामें संपूर्ण नहीं हो जाता। दैवीयोजनामें एक मालाके कालमें एक कोटिका जीवन क्रमशःदूसरे उच्चकोटि तक विकसित हो जाना चाहिए। इस प्रकार जो जीवन हमारी मालाके आरंभमें (ग्रह 'क' पर प्रथम परिक्रमामें) पशु-कोटिका था, वह मालाके अंतमें 'ज' ग्रह पर सातवीं परिक्रमाके अंतमें मानवकोटिमें पहुँच जायगा; उसी तरह जो मालाके आरंभमें वनस्पति था, वह मालाके अंत होते-होते पशुकोटिमें पहुँच जायगा। यदि हम लौटकर चित्र ६८ को देखें तो जीवनकी भिन्न-भिन्न कोटियाँ स्पष्ट हो जायँगी; प्रत्येक अगली कोटिकी प्राप्तिमें एक संपूर्ण मालाका समय लगता है।

जब हमारी मालाका आरंभ ग्रह 'क' पर प्रथम परिक्रमामें हुआ; तब उसमें सातों कोटियोंका जीवनकार्य प्रारंभ हुआ, प्रथम तात्विक सत्वसे मानवजाति तक; परंतु फिर इस मानव-जातिने अपने मानवगुण कहाँ अर्जित किये, पशुकोटिने पशुकोटिके गुण कहाँ प्राप्त किये, जिससे वे इस अवस्थामें मालाका कार्य आरंभ कर सके? इसका उत्तर हमें चित्र ७१ में मिलेगा। उसमें हम देखेंगे कि चौथा वृत्त पृथ्वीमालाका

है ; यह प्रायः चित्र ६९ का लघुरूप ही है, क्योंकि इसमें तीन कालेवृत्त मंगल, पृथ्वी और बुधके द्योतक हैं, इनकी
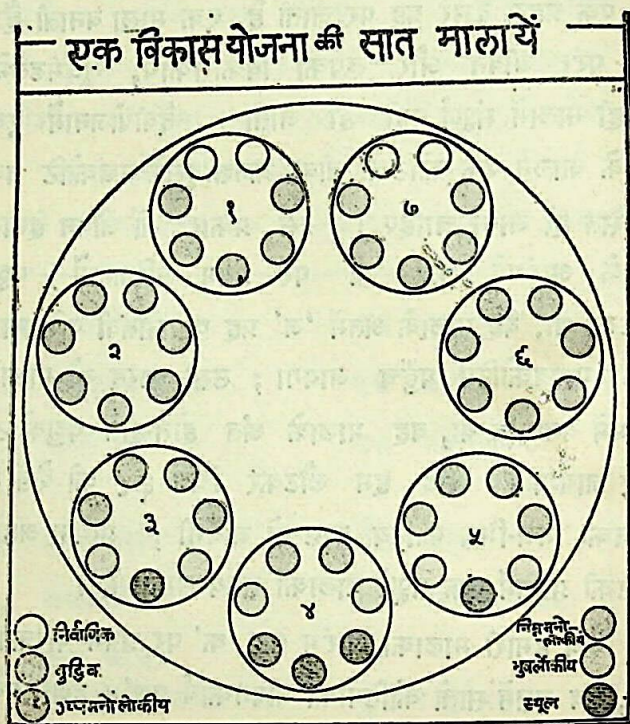
चित्र ७१

प्रकृति स्थूल है और ग्रह 'ख' तथा 'छ' भुवर्लोकीय प्रकृतिके हैं और 'क' तथा 'ज' ग्रह निम्न मनोलोकीय प्रकृतिसे बने हैं। चौथी मालसे पहिले तीसरी माला है, जो चन्द्रमाला

है। इस चन्द्रमालामें भी सात गोले हैं, लेकिन इनमें एकही गोला स्थूल प्रकृतिका बना है, दो भुवर्लोकीय प्रकृतिके, दो निम्न मनोलोकीय प्रकृतिके और दो उच्च मनोलोकीय प्रकृतिके।

हमारी पृथ्वीमालामें प्रविष्ट होनेसे पहिले हमारी जीवनधारा युगोंतक अपनेसे पहिलेवाली माला चंद्रमालाको अनुप्राणित कर चुकी है; परंतु चंद्रमाला पर यह जीवनधारा आजकी श्रेणींसे एक श्रेणी पीछे थी। अर्थात् जो जीवन आज पृथ्वीमाला पर मानवजातिके रूपमें है, वह चंद्रमालामें पशुकोटिमें था, हमारे पृथ्वीमालाकी पशुकोटिका, वहाँकी वनस्पतिकोटिमें था, और इसी प्रकार अन्य जीवनकोटियाँ भी चंद्रमाला पर एक श्रेणी पीछे थीं।

ठीक इसी प्रकार चंद्रमालापरकी जीवनकोटियाँ उससे पिछली माला २ परसे आयी थीं। इस दूसरी माला पर स्थूल ग्रह कोई नहीं है। इसमें एक भुवर्लोकीय ग्रह, दो ग्रह निम्न मनोलोकीय, दो उच्च मनोलोकीय और दो बुद्धिक प्रकृतिसे बने हैं। इस दूसरी मालामें भी प्रत्येक जीवन कोटि चंद्रमालाके जीवनकोटिसे एक श्रेणी पीछे थी। दूसरी-मालाकी जीवनधारा माला नं० १ से आयी थी; यहाँ पहली माला पर केवल एक निम्न मनोलोकीय ग्रह था, दो उच्च मनोलोकीय ग्रह थे, दो बुद्धिक प्रकृतिके, और दो निर्वाणिक प्रकृतिके। इस प्रथम मालाके ऊपरकी जीवनकोटियाँ दूसरी

मालाकी जीवनकोटियोंसे भी एक श्रेणी पीछे थीं। संक्षेपमें विकासकी दिशाके अनुसार प्रथम मालाका खनिजजीवन दूसरी माला पर वनस्पति रूपमें प्रकट हुआ, तीसरी माला (चंद्रमाला) पर, पशुरूपमें और चौथी माला (हमारी इस पृथ्वीमाला) पर, वही जीवन हमारी मानवजातिका रूप धारण किये हुए है।

जब सातवीं परिक्रमाके अंतमें पृथ्वीमालाका कार्य समाप्त हो जायगा, तो जीवनकी सभी कोटियाँ एक श्रेणी ऊँची चढ़ चुकी होंगी; आजका हमारा पशुजगत् हमारी मालाके अंत समय मानवकोटिमें जा चुकेगा; हमारा वनस्पतिजगत् पशु-कोटिमें प्रविष्ट हो चुकेगा। हमारी मानवजाति मानवतासे एक श्रेणी और ऊँचे जा चुकेगी। पाँचवीं माला तीसरी मालाके समान ही होगी, कमसेकम गोलोंकी प्रकृतिके संबंधमें। जैसे तीसरी मालामें एक ही स्थूल ग्रह था, वैसे ही पाँचवी मालापर भी एकही स्थूल ग्रह होगा, दो भुवर्लोकीय ग्रह होंगे, दो मनोलोकीय और दो उच्च मनोलोकीय। छठी और सातवीं मालाके ग्रह वैसे ही होंगे, जैसे कि चित्रमें दिखाये गये हैं।

प्रथम, द्वितीय और तृतीय मालाओंका कार्य समाप्त हो चुका है, और उनके ग्रह विघटित हो चुके हैं, केवल तीसरी मालाका स्थूल ग्रह चंद्रमा अभी बना है, यद्यपि वह छोटा हो गया है और पृथ्वीके चारो ओर परिक्रमा करता है। चंद्रमा पर अब जीवनधाराका कोई अंश शेष नहीं है, और वह

मृतप्राय ग्रह है और अपने पूर्ण विघटीकरणकी वाट जोह रहा है। सात मालाओंके ठीक बीचोबीचमें विकासक्रम इस समय है, क्योंकि हमारी यह माला चौथी है और चौथी मालाके चौथे ग्रह पर हम लोग इस समय रहते हैं और यह चौथी परिक्रमा है।

जब पृथ्वीमालाका कार्य समाप्त हो चुकेगा, तो हमारे समक्ष विकासशील जीवनकीकोटियोंका कार्य पाँचवीं माला पर करनेको रहेगा। इस मालामें एक स्थूल ग्रह होगा। इस स्थूल ग्रहका निर्माण कुछ छोटी छोटी तारिकाओंका एकीकरण करके होगा; ये तारिकाएँ मंगल और बृहस्पतिके बीच छोटे छोटे ग्रहोंकी एक चूड़ी बनाये हुए हैं। जब तक ये छोटी छोटी तारिकाँ ग्रहमें एकीकृत होंगी और जीवनधाराके विकासका क्षेत्र बननेके योग्य होंगी, तब तक पृथ्वी-माला परका कार्य समाप्त हो चुकेगा। हमारी पृथ्वी एक मृतग्रह बन चुकी होगी, जिसपर विकासशील जीवनका कोई चिन्ह शेष न रहेगा। उसका आकार भी सिकुड़ कर छोटा हो चुका होगा—इसका कारण है, तरल और वाष्पमय पदार्थोंका अभाव हो जाना तथा कुछ और भी कारण होंगे—और फिर यह आकृष्ट हो कर नयी मालाके स्थूल ग्रहके साथ चन्द्रमाके रूपमें हो जायगी।

हमारे वर्तमान पशुकोटिका कार्य पाँचवी मालामें मानवजातिके रूपमें आरंभ होगा; हमारे वर्तमान वनस्पति कोटिका रूप वहाँकी पशुकोटिका होगा। ठीक इसीतरह छठी

और सातवीं मालाओंमें, जो अभी भविष्यमें हैं, कार्य होगा। प्रत्येक बाद आनेवाली मालामें पिछली मालासे जीवनकोटि एक श्रेणी आगे बढ़ जायगी।

सात मालाओंके लगातार कार्यको एक 'विकासकी योजना' कहते हैं। ऐसी सात योजनाएँ होती हैं और प्रत्येक योजनाका अध्यक्ष एक ग्रहाधिपति होता है; यही नहीं, यह प्रत्येक विकास-योजना ग्रहाधिपतिके उदात्त जीवनका प्रकटीकरण भी है। वे सात ग्रहमालाएँ मानों उसके जीवनके सात जन्म हैं। सातों ग्रहाधिपतिके समक्ष एक एक विकासयोजना निरीक्षण और पथप्रदर्शनके लिए रहती है; प्रत्येक विकास-योजनामें सात मालाएँ होती हैं और प्रत्येक मालामें सात पृथक पृथक ग्रह (स्थूल और सूक्ष्म) होते हैं।

इस समय हमारे सूर्य-मंडलमें सात योजनाएँ कार्य कर रही हैं। उन्हें अपने कार्यके किसी विशेष अवस्थामें स्थूल ग्रहकी आवश्यकता पड़ती है। इन योजनाओंकी वर्तमान अवस्था चित्र ७२ में दिखाई गयी है। (कहते हैं कि तीन विकास योजनाओंमें स्थूल ग्रहकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती, पर उनके ग्रहोंका क्या क्रम है, इसके बारेमें कुछ भी ज्ञान उपलब्ध नहीं है।) जिन विकासयोजनाओंका संबंध वल्कन, बृहस्पति, शनि तथा यूरेनससे है, वे योजनाएँ पृथ्वीकी योजनासे एक माला पीछे हैं। नेपचून योजना जिसमें प्लूटो और एक अन्य

अनाविष्कृत ग्रह है, पृथ्वीयोजनाकी तरह, चौथी मालामें है और शुक्र विकासयोजना पृथ्वीयोजनासे एक माला और आगे है।
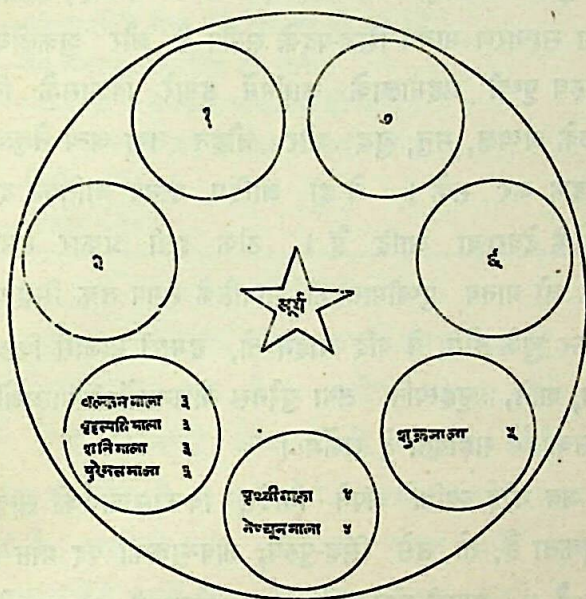
चित्र ७२

यह स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि कोई स्थूल ग्रह तापमान और चाप अथवा वायुके अभावके कारण ऐसे जीवनका पोषण करनेमें असमर्थ हो, जैसा कि हम अपनी पृथ्वी पर देखते हैं, फिर भी अभौतिक विकासके भी ऐसे कई प्रकार

हैं जो अपना कार्य कुशलताके साथ उन ग्रहोंके भुवर्लोकमें कर सकते हैं, जिन ग्रहों पर भौतिक जीवन संभव नहीं है।

शुक्र-योजना पृथ्वी-योजनासे एक माला आगे है; इसीलिए वहाँका साधारण मानव सिद्ध-पदके समीप है और शुक्रलोकके सिद्धपुरुष पृथ्वी ग्रहमालाके आरंभमें हमारे विकासके लिए भूमंडलके अध्यक्ष, मनु, बुद्ध और चौहन तथा अन्य नेतृत्वके पद ग्रहण कर सके। ये ही आदिम मानव जातिकी दन्त कथाओंके देवराजा आदि हैं। ठीक इसी प्रकार हमारी पृथ्वीके जो मानव पृथ्वीमालाकी समाप्तिके समय तक सिद्ध-पद प्राप्त कर चुके होंगे, वे यदि चाहेंगे तो, हमारी मालासे पिछड़ी वल्कन, शनि, बृहस्पति, तथा युरेनस योजनाओंकी मालाओंके विकासकार्यमें सहायता दे सकेंगे।

जब कोई व्यक्ति अपने निर्दिष्ट विकासकार्यको सम्पूर्ण कर चुकता है, तो उसे सिद्ध-पुरुष, जीवन्मुक्तका पद प्राप्त हो सकता है। हमारी मानवजातिके कुछ अग्रगामी जीवात्माओंने यह पद अभी ही प्राप्त कर लिया है। जब कोई जीवात्मा सिद्धपदको प्राप्त कर लेता है और जितना अनुभव उसे अपनी मालासे मिल सकता था, मिल चुकता है, तो उसके सामने सात संभावनाएँ रहती हैं, जिनमेंसे किसीको भी वह अपनी प्रगति और कार्यकलापके लिए चुन सकता है। ये सात संभावनाएँ चित्र ७३ में संक्षेपमें दिखाई गयी हैं।

सिद्ध पुरुषके समक्ष सात संभावनाएँ
१—मानवजातिके साथ रह कर सिद्धसंघका अधिकारी-पद ग्रहण करे।
२—मानवजातिके साथ 'निर्माणकाय' हो कर रहे।
३—देव-समूहमें सम्मिलित हो जाय।
४—'शब्दब्रह्म'के सेवकोंमें सम्मिलित हो जाय।
५—आगामी ग्रहमालाके कार्यकी तय्यारी करे।
६—निर्वाण प्रवेश।
७—निर्वाण प्रवेश।

चित्र ७३

जो सात संभावनाएँ सिद्ध पुरुषके समक्ष रहती हैं, उनमेंसे कोई किसीसे श्रेष्ठ नहीं है। प्रत्येक महात्मा अपने स्वभाव तथा दैवी योजनाकी आवश्यकताके अनुसार अपने पथका चुनाव कर लेता है। कुछ लोग, (इनकी संख्या बहुत थोड़ी होती है,) अपनेको मनु, बुद्ध, या चोहन आदि सिद्धसंघके अधिकारियोंके पदके योग्य बनानेका निश्चय करते हैं—यही सिद्धसंघ विकासक्रमका पथप्रदर्शन करता है। जो लोग इस कार्यको ग्रहण करते हैं, उन्हें बराबर शरीर धारण किये रहना पड़ता है, यद्यपि सिद्ध हो जाने पर उनके लिए शरीर धारण करनेकी अनिवार्यता कभीकी समाप्त हो चुकती है। एक दूसरे स्वभाववाले सिद्धपुरुष सिद्धसंघमें कोई अधिकारीपद तो नहीं ग्रहण करना चाहते, किंतु रहते मानवजातिके साथ ही हैं;

ये अदृश्य जगत्में 'निर्माणकाय' हो कर रहते हैं। इस स्थितिमें रह कर वे प्रचुर मात्रामें आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न करते हैं; इस शक्तिका उपयोग सिद्धसंघके सदस्य मानवजातिकी प्रगतिके लिए करते हैं।

एक तीसरे प्रकारके सिद्ध-पुरुष देव-समूहमें सम्मिलित हो जाते हैं और कभी अप्रत्यक्ष रीतिसे मानवजातिकी सहायता करते हैं और कभी पृथ्वीके अतिरिक्त सूर्यमंडलके किसी अन्य भागमें कार्य करते हैं। एक और भी प्रकारके सिद्ध पुरुष होते हैं, जो 'शब्दब्रह्मके सेवकों'में सम्मिलित हो जाते हैं और अपनेको सूर्यमंडलके किसी भी भागमें कार्य करनेके योग्य बनाते हैं और दैवी योजनाकी आवश्यकतानुसार जहाँ भी भेजे जाते हैं, चले जाते हैं। कुछ सिद्धपुरुष पाँचवी ग्रहमालाके आरंभके लिए तैयारीका कार्य करेंगे। छठे और सातवें प्रकारके सिद्धपुरुष आध्यात्मिक विकासकी एक विशेष अवस्थामें प्रविष्ट होते हैं, जिसका कार्यक्रम हमारी चेतना ठीक-ठीक समझ ही नहीं सकती—इसे 'निर्वाण प्रवेश' कहते हैं। परन्तु यह निर्वाण किसी प्रकारसे शून्य हो जाना नहीं है, वरन् इस प्रकार वे अपनेको दैवी योजनाके लिए सब प्रकार से समर्पित कर देते हैं, यद्यपि इसका रहस्य हमारी वर्तमान चेतना-शक्तिकी समझसे बाहरकी बात है।

यह समस्त विकासक्रम जिसके प्रस्फुटित होनेमें लाखों

वर्ष लगते हैं, हमारे लिए कल्पनातीत है। विकासकी प्रत्येक श्रेणीमें अधिकाधिक शक्ति, ज्ञान और सौंदर्यका विश्वमें उदय होता है। प्रत्येक परिक्रमाकी वनस्पतिकोटि पिछली परिक्रमाकी वनस्पतिकोटिसे अधिक विकसित होती है, और प्रत्येक ग्रहमालामें पिछली ग्रहमालासे और भी अधिक विकसित; जिस प्रकार हमारे आजके वृक्ष, पौदे, और झाड़ियाँ अतीत कालकी वनस्पतिसे अधिक सुन्दर दल, पल्लव और पुष्पसे युक्त हैं; जिस प्रकार हमारे पक्षिगणका रंग, उनके पंख, उनके गीत और उनका प्रसन्न जीवन उनके भद्दे पूर्वजोंसे कहीं अधिक सुन्दर और मनोहारी है; वैसे ही भावी परिक्रमाओं और ग्रहमालाओंके पशुपक्षी हमारी वर्तमान परिक्रमाके पशु-पक्षियोंसे कहीं अधिक सुन्दर होंगे। अदृश्य परमाणु भी एक परिक्रमासे दूसरी परिक्रमामें, और एक मालासे दूसरी मालामें विकसित होता रहता है और ज्यों-ज्यों कल्प बीतते जाते हैं, समस्त जीवनका प्रकटीकरण और आत्मप्रकाशन अधिक उन्नत होता जाता है।

मानवजीवन भी प्रत्येक परिक्रमामें बदलता रहता है। हमारे मानसिक जीवनकी जो गहनता और सुंदरता अगले परिक्रमामें होगी, उसका अंदाज़ भी हम अभी नहीं लगा पाते, क्योंकि हमारे मस्तिष्कके अणु-परमाणु भी आजकी चौथी परिक्रमाके अणु-परमाणुओंसे अधिक विकसित प्रकृतिके होंगे।

पदार्थ भी शक्ति ही है और रूप भी जीवन ही है, और मानवता मौलिकरूपसे ईश्वरतत्वसे पृथक नहीं है, इसलिए जहाँ कहीं विकास हो रहा है, वहीं भगवान् शब्दब्रह्म कार्यरत हैं और जहाँ वे हैं, वहाँ आनन्दमय कार्य क्रमशः, पग-पग, पूर्णत्वकी ओर अग्रसर हो रहा है।

श्री सी. जिनराजदास एम०ए० थिओसॉफिकल सोसायटी के चौथे अध्यक्ष एक सुप्रसिद्ध विद्वान और थिऑसोफी के उपदेष्टा थे। 'फर्स्ट प्रिंसिपल्स ऑफ थिऑसोफी' उनकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक समझी जाती है। इस पुस्तक का संसार की नौ भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और अंग्रेजी ग्रन्थ के दस संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी पहिली भारतीय भाषा है, जिसमें उसका प्रकाशन हो रहा है।

प्रथम भाग में रूप और जीवन का विकास, सभ्यताओं का उत्थान और पतन, पुनर्जन्म के नियम और कर्म के नियम ये चार अध्याय हैं। दूसरे भाग में अदृश्य जगत, जन्म और मृत्यु में मानव पशुओं का विकास, त्रिमूर्ति का कार्य और जीवन की कोटियाँ, ये पाँच अध्याय हैं। तीसरे भाग में पदार्थ और शक्ति का विकास, जीवन का विकास, प्रकृति का सौन्दर्य-संदेश, चेतना का विकास, संसार का आभ्यंतरिक शासन, साधन पथ, भगवान की योजना अथवा विकास और उपसंहार, ये शेष अध्याय हैं।

मूल्य — २-५० प्रतिभाग